www.thearyasamaj.org

ISSN-2278-09112

ओ३म्

अङ्कः ६०

जून २०१३

आर्ष-ज्योतिः

विद्यार्थिविशेषाङ्कः

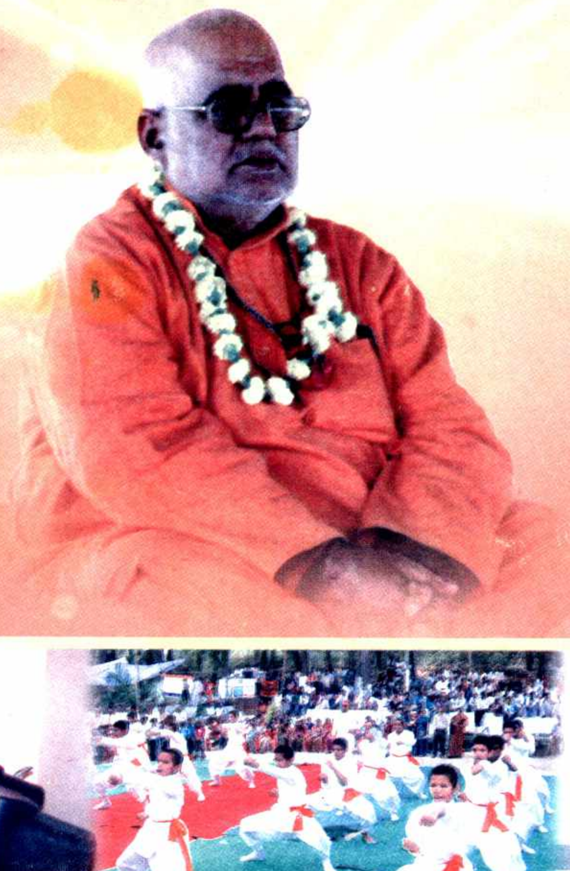

श्रीमद्दयानन्दवेदार्ष-महाविद्यालय-न्यासः

११९ गौतमनगरम्, नवदेहली

दूरभाषः - ०१३५-२१०२४५१ दूरवाणी - ०९४११११०६१०४

ई-मेल : arsh.jyoti@yahoo.in website: www.vedarshnyasgurukul.com

www.thearyasamaj.org

श्रद्धाकुसुमानि

गुरुगुरुगुरुं गेयं श्रुतिशास्त्रविशारदम्।
आचार्यरामनाथं तं नौमि नम्यं नताननः।।

विद्यावतां वरेण्योऽसौ श्रुत्यर्थार्पितजीवनः।
आचार्यो रामनाथो नः प्राप्ताप्राप्ययशोधनः।।

आचार्यो रामनाथवेदालङ्कारः

वन्दनीयाय विद्वत्सु विशेषशेमुषीमते।
युवमनीषिणे नित्यं नारायणाय नो नमः।।

व्याकरणादिशास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमः।
लब्धामलयशस्कोऽयं स्वल्पकाले मनीषिषु।।

रवीन्द्रकुमारः

डॉ. नारायणमुखर्जी

www.thearyasamaj.org

❖ ओ३म् ❖

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

आर्ष-ज्योतिः

ISSN : 2278-09112

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दसरस्वती
कै. रुद्रसेन आर्यः
श्रीश्रीकान्तवर्मा
श्रीहजारीलालः
श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

प्रो. महावीरः
प्रो. शशिप्रभाकुमारः
प्रो. भीमसिंहः
प्रो. सोमदेवशतांशुः
प्रो. विजयपालप्रचेताः
डॉ. धर्मेन्द्रकुमारशास्त्री
डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा
डॉ. विजयालक्ष्मी

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः
रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेव आर्यः

❖अङ्कस्य निर्णायकमण्डलम्❖

डॉ. सुखदासोलङ्की
डॉ. विनयविद्यालङ्कारः

❖कार्यालय❖

श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल
दून वाटिका-२, पौंधा,
देहरादून (उत्तराखण्ड)
दूरभाष - ०९४११११०६१०४

मूल्य : रु. 25/- प्रति

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृ.सङ्ख्या
सम्पादकीय		
स्वस्थवृत्तम्		1
सद्वृत्तम्		31
इतिवृत्तम्		49
आध्यात्मिक जीवन		62
संस्कृत-जगत्		
मिथ्यारोपः	– ब्र. शिवदेवार्यः	71
विद्यार्थिनां लक्षणानि	–डॉ॰ धर्मेन्द्र कुमारः	73

नीमीतीरे सततसुखदे सर्वतो दर्शनीयम्,
पौन्धाग्रामे नगरनिनदाद् दूरमीक्ष्यं मनुष्यैः।
हैमे तुङ्गे शिखरिशिखरे शोभनोपत्यकायाम्,
आर्षज्योतिर्मठगुरुकुलं राजते संसृतौ मे।।

रवीन्द्रकुमारः

न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, दून वाटिका-२ पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति ऑफसेट स्क्रीन प्रिन्टर्स, ३५ कांवली रोड, देहरादून, मोब.: ९८९७९७६२२२ से मुद्रित।

www.thearyasamaj.org

वेद-सन्देशः

मन्त्रः

शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु॥१४॥

पदार्थः - (शर्म) सुखकारकं गृहम्। शर्म इति गृहनामसु पठितम्।। निघं0 ३। ४।। (असि) भवति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (अवधूतम्) दूरीकृतं विचालितम् (रक्षः) दुष्टस्वभावो जन्तुः (अवधूताः) दूरीभूताः (अरातयः) दानशीलतारहिताः शत्रवः (अदित्याः) पृथिव्याः। अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्।। निघं0 १। १।। (त्वक्) त्वग्वत् (असि) भवति (प्रति) क्रियार्थे पश्चादर्थे। प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह।। निरु0 1।3।। (त्वा) तत्तं वा (अदितिः) नाशरहितो जगदीश्वरः। अदितिरिति पदनामसु पठितम्।। निघं0 ५।५।। अनेन ज्ञानस्वरूपोऽर्थो गृह्यते। अन्तरिक्षं वा (वेत्तु) जानातु ज्ञापयतु वा (अद्रिः) मेघ अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्।। निघं0 1।१०।। (असि) अस्ति (वानस्पत्यः) वनस्पतेर्विकारो रसमयः (ग्रावा) जलगृहीतो मेघः। ग्रावेति मेघनामसु पठितम्।। निघं0 1।१०।। (असि) अस्ति (पृथुबुध्नः) पृथु विस्तीर्णं बुध्नमन्तरिक्षं निवासार्थं यस्य स पृथुबुध्नो मेघः। बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् धृता आप इति।। निरु0 १०। ४४।। (प्रति) क्त्वार्थे (त्वा) तम् (अदित्याः अन्तरिक्षस्य (त्वक्) त्वग्वत् सेविनम् (वेत्तु) जानातु ज्ञापयतु वा।। अयं मन्त्रः श0 १। १। ४। ४-७ व्याख्यातः।।१४।।

भावार्थः - ईश्वरेणाज्ञाप्यते मनुष्यैः शुद्धायाः सर्वतोऽवकाशयुक्तायाः पृथिव्या मध्ये सर्वेष्वृतुषु सुखदायकं गृहं रचयित्वा तत्र सुखेन स्थातव्यम्। तस्मात्सर्वे दुष्टा मनुष्या दोषाश्च निवारणीयास्तत्र सर्वाणि साधनान्यपि स्थापनीयानि। तत्रैव वृष्टिहेतुर्यज्ञोऽनुष्ठाय सुखानि संपादनीयानि। एवं कृते वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा जगति महत्वसुखं सिध्यतीति।।१४।।

भाषार्थः - ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुख पूर्वक वास करो तथा उसमें रहने वाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उसका अनुष्ठान कर के नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है।।१४।।

www.thearyasamaj.org

सम्पादक की कलम से....

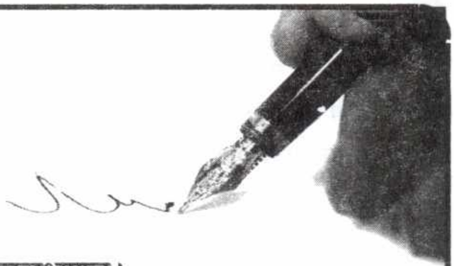

नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यश्च।

युवा असीम शक्ति का अजस्र प्रवाह होता है। उसकी आत्मा में परमात्म शक्ति का तेज होता है एवं बलिदानी साहस होता है। युवा ऊर्जा से प्रपूरित एक ऊर्जस्वल शक्ति होती है। विश्व इतिहास में जिस प्रकार फ्रांस की क्रान्ति, जर्मन की क्रान्ति, इटली की क्रान्ति, अमेरिका की क्रान्ति, रुस की क्रान्ति विख्यात है, उसी प्रकार भारत में स्वतन्त्रता संग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन सभी क्रान्तियों का मूल स्रोत केवल और केवल युवा शक्ति ही है। युवा शक्ति परम बल की अक्षय निधि है। युवा राष्ट्र का सशक्त मेरुदण्ड है। यह युवा शक्ति जब जागृत होती है तो सुषुप्त, निश्चेतन, निष्क्रिय राष्ट्र भी जागरूक, चेतन और सक्रिय हो जाता है। अगर किसी राष्ट्र की युवाशक्ति उग्र व मदान्ध होकर पथविचलित हो जाती है तो राष्ट्र का अधःपतन नितान्त अवश्यंभावी है। वहीं यदि यह शक्तिसमूह राष्ट्रोन्नति हेतु प्रतिबद्ध हो जाये तो राष्ट्र अहर्निश प्रगतिपथ पर अग्रसर हो जाता है।

युवा शब्द ''**यु मिश्रणे अमिश्रणे च**'' धातु से सिद्ध होता है। जिसकी व्युत्पत्ति स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि ''**यौति मिश्रयति अमिश्रयति वा स युवा।**'' इस व्युत्पत्तिजन्य अर्थ से सुस्पष्ट है कि जो **मिश्रयति** अर्थात् दुष्कर कार्य को भी अतिसरलता व निपुणता से सफल सिद्ध कर दे और **अमिश्रयति** अर्थात् शाश्वत चलने वाली अनेकशः विपदाओं को विदीर्ण कर शीघ्र ही सर्वस्व समस्याओं का निदान कर दे वह युवा कहलाता है। ''**चरैवेति चरैवेति**'' अर्थात् निरन्तर गतिशील रहो। उपनिषत् भी इस अमर सन्देश से युवाओं को उत्साहित करती है। तभी तो युवा उद्घोष करते हैं कि –

असंख्य कीर्ति रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह सी, सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिन्धु में सुवडवाग्नि से जलो, प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो, बढ़े चलो।।

भर्तृहरि जी युवाओं को सन्देश देते हुए कहते हैं कि –

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः, प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः, प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।।

अर्थात् विघ्नों से भयभीत हो अधम जन कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते हैं। कुछ विघ्नों से आहत होकर प्रारम्भ किये कार्य को अर्धावस्था में ही त्याग देते हैं, जो मध्यम जन बनकर रह जाते हैं, परन्तु जो इस पुण्य वसुन्धरा पर प्रारम्भ किये कार्य को पूर्ण करके ही श्वास लेता हो वह उत्तम जन कहलाता है। इस युवा शक्ति के पास वह अदम्य, अकल्प्य, अपरिमित उत्साह एवं साहस होता है कि जब वह दृढ़ संकल्पी होकर लक्ष्य की ओर प्रगमन करता है तो लक्ष्य स्वयं ही भयभीत होकर उस साहसी युवा के चरणों में गिर जाता है, इसीलिए ही तो युवाओं को वेद सन्देश देता है कि ''**कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः**'' अर्थात् जब युवा अक्लान्त होकर लक्ष्यप्राप्ति के लिए सतत परिश्रम सही दिशा में करता है तो उस लक्ष्य को प्राप्त करना उसके बायें हाथ का कार्य है। नीतिकार कहते हैं कि–

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः, देवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।

अर्थात् परिश्रमी व्यक्ति ही विद्या, धन और यश को प्राप्त करता है। किसी वस्तु की प्राप्ति भाग्य से होती है।

www.thearyasamaj.org

यह तो कायर पुरुष बोलते हैं। धीर, वीर युवा तो स्वयं भाग्य बनाते हैं। कोई भी कठिन से कठिन कार्य युवाओं के लिए असम्भव नहीं है। जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में यदि किसी ने सुख, शान्ति और साहस की त्रिवेणी प्रवाहित की है तो वह युवा शक्ति है। तमसावृत इस भूमण्डल पर अन्धकार को चीर कर ज्योतिष्पुञ्ज से अगर किसी ने साक्षात्कार किया है तो वह युवा शक्ति है। प्रकृति के विविध रहस्यों को उजागर कर उसे कल्पवृक्ष बनाया है तो वह युवा शक्ति है। जब तक यह युवा शक्ति सुसंगठित है तब तक राष्ट्र सुसंगठित है। जब युवाशक्ति बिखर जाती है तो वह राष्ट्र भी दर्पण सा चटक कर बिखर जाता है, इसीलिए प्रिय पाठकों! इस युवा शक्ति को सुसंगठित कर सही शिक्षा, सही दिशा, सही उपदेश, सही सत्संग देना अनिवार्य है, अन्यथा यह अमूल्य शक्तिसङ्घ सही शिक्षा के अभाव में, सही दिशा के अभाव में, सही उपदेश के अभाव में, सही सत्संग के अभाव में दिग्भ्रमित हो महाविनाश का हेतु बन सकता है। महाभारत में एक शक्तिसम्पन्न युवा दुर्योधन उचित दिशानिर्देश के अभाव में स्वच्छन्द होकर सर्वनाश का कारण बना, इसीलिए इस युवा शक्ति को जब अनुभवी वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध पितरों का श्रेयस्कर उपदेश प्राप्त होता है तो युवा सुमार्ग का अनुसरण करता है, इसीलिए व्यास जी ने महाभारत में कहा कि "**न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः, न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।**" अर्थात् वह सभा सभा नहीं कहलाती जहाँ वृद्ध न हो और वह वृद्ध वृद्ध नहीं कहलाता जो सभा में धर्मयुक्त न बोलता हो। इस श्लोक से यह स्पष्ट संकेत है कि युवाओं को अनुभवी योग्य पितरों का मार्गदर्शन अवश्य मिलना चाहिए।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि युवा शौर्य, बल, पराक्रम और उत्साह से परिपूर्ण एक शक्तिपुञ्ज है। इस शक्तिपुञ्ज का राष्ट्रधर्म क्या हो? इस विषय पर परिसीमित शब्दों से प्रकाश डालते हैं। धर्म शब्द कर्तव्य का पर्यायवाची है, इसीलिए राष्ट्रधर्म शब्द से यह परिलक्षित होता है कि एक युवा का राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य है? वह अपने राष्ट्र को उन्नतिशिखर की पराकाष्ठा तक कैसे पहुँचा सकता है? समस्त विश्व में स्वराष्ट्र को कैसे विश्रुत कर सकता है? युवा शक्ति क्या करे कि उनके राष्ट्र की यशोध्वजा भुवनगगन में नक्तंदिव आन्दोलित होती रहे? इन प्रश्नों के उत्तर में कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम हमारे युवावर्ग को शैशव काल की अवस्था से श्रेष्ठ, सदाचारी, विद्वान् जनों का संसर्ग करते हुए अपने अपरिहार्य विद्यार्थी काल को सुदृढ़ करना चाहिए। जिस युवा ने विद्यार्थी जीवन में अपने समय को वृथा व्यतीत न कर सदुपयोग कर विद्योपार्जन में लगाया है। वह परिश्रमी युवा अपने चयनित लक्ष्य को प्राप्त कर आजीवन राष्ट्र की सेवा करता है। यही विद्याकाल वह समय है जब युवा सशक्त मार्गदर्शन प्राप्त कर जीवन भवन की नींव रखता है। जिस वृक्ष की जड़ कमजोर अशक्त हो तो वह दीर्घकाल तक स्थित नहीं रह सकता है। किसी नीतिकार ने कहा है कि -

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति?।।

अर्थात् जिसने विद्यार्थी जीवन में विद्या और गृहस्थ में धन अर्जित नहीं किया तथा वानप्रस्थ में तप नहीं किया वह संन्यास में क्या करेगा? इसीलिए मानवनिर्माण में विद्याकाल मानव की जड़ है। इस समय में हम जितना सशक्त, दृढ़ और आत्मविश्वास से मजबूत हो जायेंगे, उतना ही सुयोग्य नागरिक बन राष्ट्रधर्म को निपुणता से परिपूर्ण करेंगे।

युवा वर्ग को अपने पूर्वजों का सदा सम्मान करना चाहिए। माता, पिता, गुरु, विद्वान्, अतिथि की निरन्तर सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए। माता, पिता तथा गुरुजनों से प्राप्त अमोघ आशीर्वाद एक युवा के लिए दैवीय वरदान होता है। मनु महाराज कहते हैं कि -

www.thearyasamaj.org

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

अर्थात् यदि हम आयु, विद्या, यश और बल को पाना चाहते हैं तो हमें अपने ज्येष्ठ, श्रेष्ठ जनों का आदर-सम्मान करना चाहिए। वर्तमान में आये पाश्चात्य परम्परा के झञ्झावात से सुरक्षित रहकर अपनी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करनी चाहिए। पाश्चात्य सभ्यता से अपनी वैदिक परम्परा का जब युवा तुलनात्मक विवेचन करेगा तो परिणाम पायेगा कि पाश्चात्य परम्परा एक अधोगमन का प्रेयमार्ग है और वैदिक परम्परा ऊर्ध्वगमन का श्रेय मार्ग है, इसीलिए अपने राष्ट्र के विकास के लिए इस पाश्चात्य सर्पिणी से बचें।

कोई भी राष्ट्र अपनी स्वस्थ स्वसंस्कृति, स्वसभ्यता और स्वपरम्पराओं का परित्याग कर उन्नति शिखर को नहीं स्पर्श कर सकता है, क्योंकि अपनी राष्ट्रीय संस्कृति, सभ्यता व परम्परा का वह स्तम्भ होता है जिस पर राष्ट्र स्थित होता है। यदि राष्ट्र में से हमने स्वसंस्कृति, स्वसभ्यता और स्वपरम्परा के स्तम्भों को हटा दिया तो राष्ट्र का अधःपतन अवश्य है, इसीलिए अपने राष्ट्रधर्म के पालन के लिए युवाओं को अपनी संस्कृति, सभ्यता से विमुख नहीं होना चाहिए। भारतीयता हम युवाओं की अमिट पहचान होनी चाहिये। इस भारतीयत्व को खोकर तो हम सदा सदा के लिए पङ्गु बन जायेंगे, इसीलिए भारतीयता की रक्षा करना आज युवाओं का परम धर्म है। युवाओं को समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्धविश्वासों एवं अमानवीय परम्पराओं को तोड़ वैज्ञानिकता, वास्तविकता एवं सत्यता का अवलम्बन करना चाहिए। दहेज प्रथा, पर्दाप्रथा, जातिप्रथा, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा, मृतश्राद्ध आदि व्याप्त कुप्रथाओं पर युवाओं को कुठाराघात कर राष्ट्रनिर्माण में एक नवीन अध्याय जोड़ना चाहिए। जो राष्ट्र में निर्धन, असहाय, अशिक्षित, समाज की मुख्यधारा से वञ्चित मानव हैं उन सबको युवा इस इक्कीसवीं सदी का रहस्य समझाकर शिक्षा के प्रति, राष्ट्र के प्रति जागरूक करे तो यही युवा का परम राष्ट्रधर्म होगा।

आज देश में विस्तृत प्रान्तवाद, भाषावाद, नक्सलवाद, पृथक्तावाद जैसी समस्याओं का निदान युवा विद्यार्थियों के पास है। वे इन तुच्छ विचारों से ऊपर उठकर एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करें, जहाँ नागरिकों में ये विचार ही न उत्पन्न हो सके। परस्पर भ्रातृत्व भावना, एकत्व की भावना व राष्ट्रवाद की भावना का विस्तार करें। भारतीय संस्कृति का तो परिचायक ही **वसुधैव कुटुम्बकम्** है। जिस राष्ट्र के पास **सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः** जैसा पावन सूत्र हो, उस राष्ट्र में ऐसे तुच्छ विचार उत्पन्न भी नहीं होने चाहिए। आज देश भ्रष्टाचार से व्यथित है, ऐसे विकराल कलिकाल में हमें ऐसे राष्ट्रविरोधी, देशद्रोही, भ्रष्टाचारियों के विरुद्ध विरोधी स्वर मुखर करने चाहिए।

प्रिय पाठकों! वर्तमान में हमारा राष्ट्र सर्वतः शत्रुओं से आवृत्त है। ये सीमावर्ती देश हमारे राष्ट्र को उन्नतिपथ पर चलते देखना नहीं चाहते हैं, इसीलिए हमारा राष्ट्र इनके नयनों का कण्टक है। ऐसी विषम परिस्थिति में हम सब युवा विद्यार्थियों को राष्ट्ररक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए। वेद कहता है कि **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** अर्थात् यह भूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं, इसलिए वेद पुनः कहता है कि **"वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम"** अर्थात् हम इस मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले बनें। राम का यह उद्घोष कि **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** अर्थात् माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है, इसीलिए इस जन्मभूमि की रक्षा करना, इसके लिए तन-मन-धन समर्पित करना हम सब युवाओं का सौभाग्य है। राष्ट्र रक्षा के लिए युवाओं में यही भाव होने चाहिए, जो कवि ने इस प्रकार व्यक्त किये हैं कि-

www.thearyasamaj.org

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक।।

मेरे प्रिय युवा विद्यार्थियों! भविष्य हमारे हाथ में है। हमें अपने देश को सशक्त बनाने के लिए अपनी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करनी चाहिए। हम अपने को विद्यार्थी काल में इतना वज्रमय बना लें कि महान् से महान् विपदा भी हमसे टकराकर भस्मसात् हो जाये। हमें स्थान-स्थान पर रचनात्मक कार्य कर अपना राष्ट्रधर्म पूरा करना चाहिए। विद्यार्थिवर्ग को देश से विमुख होते देख कर अपार दु:ख होता है, परन्तु एक आशा की किरण अभी भी दृष्टिगोचर होती है, जो सतत सभ्य, सुशिक्षित विद्यार्थियों के निर्माण में शिखरिशिखर सा अडिग होकर संलग्न है और वह है **गुरुकुल एवं गुरुकुलीय आर्षशिक्षा।**

गत वर्षों की तरह इस वर्ष भी **आर्ष ज्योतिः का विद्यार्थी विशेषाङ्क** गुरुकुल गरिमा और प्रागल्भ्यप्रतिभा की सङ्कल्पना को आप सबके चित्त में समधिक चमत्कृत करेगा, ऐसी मुझे महती आशा है। सुधी पाठक ही स्वयं इसकी वास्तविकता का मूल्याङ्कन कर इसका सार्थक निर्णय करेंगे। कवि कुलगुरु कालिदास के शब्दों में कहूँ तो यह है कि- **आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्। बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेत:।।** अर्थात् जब तक विद्वानों की संतुष्टि न हो जाये तब तक मैं अपने इस परिश्रम को व्यर्थ ही समझता हूँ।

मुझे पितामह सदृश गुरुवर **स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी** के अमोघ आशीर्वाद एवं पितृसदृश **डॉ. आचार्य धनञ्जय जी** की परिच्छाया में पल्लवित होकर जो विद्या, प्रकाश, धैर्य, उत्साह एवं प्रेरणा की उपलब्धि हुई, जिनकी परिकृपा से पशुत्व से मनुष्यत्व की राह मिली, ऐसे समस्त प्रत्यक्ष व परोक्ष गुरुजनों का मैं आजीवन ऋणी रहूँगा। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे गुरुजनों ने मुझे पत्रिका के सम्पादन के योग्य समझ यह कार्य मुझे समर्पित किया।

मैं विद्वानों एवं विशेषकर डॉ. आचार्य देवव्रत जी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त परिश्रम से जीवन निर्माण करने की पद्धति का प्रणयन कर विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया है। मैं गुरुकुल के सभी स्नातकों का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर यथोचित विचार इस विशेषाङ्क के लिए दिये। गुरुकुल के सभी अन्य अध्यापकों, ब्रह्मचारियों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में अत्यन्त सहयोग दिया।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि संसार में वैसा कुछ भी नहीं जो सर्वाङ्ग सुन्दर हो, ''**नास्त्येवं जगति सर्वं मनोहरं यत्।**'' अत: जो कुछ अल्पज्ञतावश मानवीय कमी रह गई हों उसकी पूर्ति के लिए ''**पण्डितानां दासोऽहं क्षन्तव्यमेतत् स्खलनम्**'' कहकर यही विनम्र निवेदन करता हूँ कि आप हमारी त्रुटियों और अपने अमूल्य विचारों से हमें अवश्य अवगत करायें जिससे भविष्य में त्रुटियों को सुधार कर प्रगतिशील विचारों का अनुसरण कर सकें।

विद्वच्चरणचञ्चरीक
रवीन्द्रकुमार
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

www.thearyasamaj.org

स्वस्थवृत्तम्

शरीर के तीन आधार-स्तम्भ

जीवन क्या है? शरीर, मन, आत्मा इन तीनों के संयोग को जीवन कहते हैं। जीवन निर्माण के लिये इन तीनों का स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल आरोग्य है। रोग, आयु और जीवन को हरने वाले हैं। इनके निवारण के लिये विद्यार्थी जीवन में ही उपाय करना उचित है। सर्वप्रथम शरीर को स्वस्थ रखने के उपायों को जान, मानसिक और आत्मिक उन्नति की चर्चा की जायेगी।

हमारा शरीर आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य, इन तीन स्तम्भों पर टिका हुआ है। जैसे किसी तिपाई के तीन पैरों में से यदि एक को निकाल दिया जाए तो वह भूमि पर गिर जाती है, इसी प्रकार शरीर भी इन तीन स्तम्भों के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता, ये तीनों स्तभ एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। एक के दुर्बल होने पर इसका परिणाम दूसरे पर भी होता है। उदाहरण के लिए सन्तुलित आहार लेने से निद्रा ठीक आती है तथा ब्रह्मचर्य-पालन में सहायता मिलती है। समय पर सोने और जागने से भोजन का पाचन और ब्रह्मचर्य-पालन में सुविधा रहती है। इसी भाँति ब्रह्मचर्य की रक्षा करने पर भोजन का भली-भाँति पाचन होकर वह शरीर को बल प्रदान करता है तथा ब्रह्मचारी को निद्रा भी गहरी आती है। इसलिए स्वास्थ्य की रक्षा के लिए इन तीनों स्तम्भों पर समुचित ध्यान देना चाहिए। आइए, इन पर क्रमशः खुली दृष्टि से विचार करें।

आहार

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आहार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उचित मात्रा में ग्रहण किए आहार से कार्य करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है। व्यक्ति का जीवन, बुद्धि, सुख, सन्तुष्टि, पुष्टि, स्मृति और बल आहार के ही अधीन है। इसीलिए गीता में कहा है -

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा।।

(६/१७)

अर्थात् जिसका भोजन युक्त (सन्तुलित मात्रा में), दिनचर्या व्यवस्थित, धर्मानुकूल आजीविका के साधन और समय पर निद्रा तथा जागरण हों, ऐसे व्यक्ति का योगाभ्यास सब दुःखों को दूर करनेवाला होता है।

युक्त आहार क्या है?

युक्त आहार उसे कहते हैं जो शरीर के लिए हितकारी, सीमित मात्रा में और ऋतु के अनुकूल हो। युक्त का अभिप्राय यह भी है कि आहार में शरीर के लिए सभी आवश्यक तत्वों का समावेश हो। इसी को सन्तुलित भोजन भी कहते हैं। विभिन्न शारीरिक क्रियाओं द्वारा होने वाली टूट-फूट की पूर्ति तथा बुद्धि के लिए प्रोटीन का होना आवश्यक है। इसके स्रोत दालें और दुग्धादि पदार्थ हैं। शरीर को चलाने के लिए आवश्यक ऊर्जा श्वेतसार से प्राप्त होती है। इसके स्रोत अन्न तथा मीठे पदार्थ हैं शरीर को ऊर्जा तथा स्थिरता वसा, घृत, तेल इत्यादि प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक शारीरिक क्रियाओं को व्यवस्थित करने के लिए विटामिन तथा खनिज लवणों का होना भी आवश्यक है।

कहते हैं एक बार आचार्य चरक ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। एक दिन विद्यालय का अवकाश होने पर, जिस मार्ग से विद्यार्थी छात्रावास में जाते थे, उस मार्ग के किनारे स्थित एक पुराने वृक्ष के कोटर में वे छिपकर बैठ गए। जो भी विद्यार्थी वहाँ से

www.thearyasamaj.org

गुज़रता, वे अस्पष्ट वाणी में तीन प्रश्न पूछते – **कोऽरुक्! कोऽरुक्!! कोऽरुक्!!!** अर्थात् स्वस्थ कौन है? अनेक विद्यार्थी उस मार्ग से चले गए, परन्तु किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उन्हीं में एक कुशाग्रबुद्धि छात्र वाग्भट भी था। उसने पेड़ के समीप गुज़रते हुए जब इन प्रश्नों को सुना तो समझ गया कि गुरु जी ही इन प्रश्नों के व्याज से परीक्षा ले रहे हैं। उसने तत्काल उत्तर दिया – **हित-भुक्। मित-भुक्।** ऋत-भुक्। स्वस्थ वह है जो अपनी प्रकृत्ति के अनुकूल तथा हितकारी भोजन लेता है तथा हितकारी भोजन भी मित अर्थात् भूख से कुछ कम मात्रा में ग्रहण करता है, और जो ऋतभुक् अर्थात् जो ऋत, ईमानदारी एवं मेहनत की कमाई खाता है। इसके अतिरिक्त ऋत का अर्थ ऋतु भी है, अर्थात् जो ऋतु के अनुकूल भोजन खाता है वही स्वस्थ रहता है।

वस्तुतः अधिकांश रोगों की उत्पत्ति हमारे भोजन की गड़बड़ी से ही होती है। यदि हम इस ओर समुचित ध्यान दें तो हमारा बहुत-सा धन और समय डॉक्टरों की भेंट चढ़ने से बच जाए।

आहार की मात्रा

भोजन कितनी मात्रा में लिया जाए, इसका निश्चय व्यक्ति की आयु, कार्य और जठराग्नि पर निर्भर करता है। जिस भोजन के लेने पर वह सुखपूर्वक पच जाए तथा शरीर की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, उतनी मात्रा में लेना उचित है। सामान्यतः आमाशय का आधा भाग अन्न से, चतुर्थांश पेय पदार्थ – जल, तक्र, छाछ आदि द्वारा और शेष चतुर्थांश वायु के विचरण अर्थात् सुखपूर्वक श्वास-प्रश्वास के लिए खाली छोड़ देना चाहिए। मात्रा में लिये गए भोजन के लक्षण निम्नलिखित हैं –

१. आमाशय पर कोई दबाव न पड़े।
२. उदर तथा कुक्षि में भारीपन न हो।
३. भूख और प्यास दोनों शान्त हो जाएँ।
४. कोई कार्य करते समय आलस्य नहीं आए।
५. भोजन शरीर का पोषण करने की क्षमता वाला हो।

अल्पमात्रा में भोजन लेने से हानि

आहार की हीन मात्रा लेने से उदावर्त (पेट में वायुगोला या अफारा), बल, वर्ण तथा धातुओं का क्षय होता है। मन की तृप्ति नहीं होती।

इसी भाँति मात्रा से अधिक भोजन लेने से वात, पित्त, कफ, ये सभी दोष प्रकुपित होकर आलस्य, शरीर में भारीपन, मोटापा, अजीर्ण तथा मन्दाग्नि आदि विविध रोगों की उत्पत्ति होती है।

भोजन के नियम

१. स्नान के आधा घण्टा पश्चात् भोजन करना चाहिए अथवा हाथ-पैर धोकर भोजन करना उचित है।
२. भोजन से पहले या तुरन्त बाद में पानी पीने से आमाशय से स्रवित होने वाले पाचक रस हल्के हो जाने के कारण भोजन का पाचन भली-भाँति नहीं होता और नज़ला, जुकाम, खाँसी इत्यादि कफ के रोग उत्पन्न होते हैं। यदि भोजन रूखा या ग्रीष्म ऋतु है तो मध्य में थोड़ा जल पी सकते हैं। भोजन करने के आधा घण्टा पश्चात् जल पी सकते हैं।
३. पहले मधु और गरिष्ठ तथा स्नेहयुक्त पदार्थ खाएँ। उसके पश्चात् लवण, अम्ल, कटु और तिक्त पदार्थो को खाना उचित है। अन्त में थोड़ा मधुर पदार्थ खाकर भोजन समाप्त करें।
४. प्रातःकाल उठकर उषःपान (जल पीना), दोपहर के भोजन के पश्चात् तक्र, और दिन की समाप्ति (रात्रि) में दूध पीना आयुवर्धक है।
५. दूध भोजन के आधा घण्टा बाद में पीना चाहिए।
६. भोजन के तुरन्त बाद शारीरिक या मानसिक श्रम करने से उसका पाचन भली प्रकार नहीं हो पाता।

इसी भाँति भोजन करके शीघ्र सो जाने से भी उसके पचने में विलम्ब होता है। दोपहर के भोजन के पश्चात् १५-२० मिनट तक वज्रासन में बैठें अथवा दाहिनी करवट, सीधे और फिर बाईं करवट लेटकर कुछ समय विश्राम करना चाहिए। सायंकाल भोजन के पश्चात् कुछ समय तक भ्रमण या मनोरंजन करना उपयोगी है।

७. अकेला स्वादु वस्तु न खाए। अपने आश्रित या वृद्धजनों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भोजन करना शास्त्र सम्मत है। अकेला खाने वाला मानो पाप को ही खा रहा है।

८. उच्छिष्ट भोजन न तो किसी को देना चाहिए और न ही खाना उचित हैं एक ही थाली में अनेक व्यक्तियों का एक साथ खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है।

९. भोजन को देखकर 'यह स्वादु नहीं है, रोटी कच्ची है, सब्ज़ी ठीक नहीं बनी' ऐसा कहना उचित नहीं है। जो कुछ मिले उसे प्रसन्न होकर खाने से वह शरीर को अधिक शक्ति प्रदान करता है। वस्तुतः स्वाद भोजन में न होकर भूख में है।

१०. '**शतं विहाय भोक्तव्यम्**' अनेक कार्यों को छोड़कर भोजन के समय भोजन कर लेना चाहिए। समय पर भोजन करना स्वास्थ्यप्रद और असमय में खाना रोगोत्पादक है।

निद्रा

मनुष्य का सुख-दुःख, पुष्टि-दुर्बलता, ज्ञान-अज्ञान और जीवन-मृत्यु निद्रा के अधीन है। जागृत अवस्था में शरीर, मन तथा इन्द्रियों के कार्य करते हुए श्रान्त हो जाने और तमोगुण की वृद्धि होने के कारण निद्रा आती है। उस समय दिनभर कार्य करने से क्षतिग्रस्त कोशिकाओं की पूर्ति और पुष्टि होकर वे पुनः कार्यक्षम बन जाती हैं रक्त में एकत्रित कार्बन-डाय-ऑक्साइड, यूरिक ऐसिड आदि विजातीय तत्त्वों का निष्कासन श्वसन-तन्त्र और उत्सर्गी तन्त्र द्वारा होकर रक्त शुद्ध हो जाता है। मन तथा इन्द्रियाँ पुनः स्फूर्ति से भर जाती हैं। व्यक्ति अपनी खोई शक्ति को पुनः प्राप्त करके अपने दैनिक कार्यों में लग जाता है। संक्षेप में कहें तो निद्रा देवी हमारी निष्क्रिय हुई बैटरी को पुनः सक्रिय (चार्ज) करके हमें नया जीवन प्रदान करती है।

समुचित निद्रा के अभाव में भोजन का परिपाक भली-भाँति न होने से प्रातः मलत्याग भी ठीक नहीं हो पाता। भोजन का पाचन न होकर पेट भारी रहता है। पेट के भारी रहने से ध्यान-साधना में मन न लगकर आलस्य आने लगता है। शरीर का टूटना, आलस्य, जम्भाई, पेट में भारीपन और शिर में पीड़ा इत्यादि विकार पर्याप्त निद्रा के न लेने से उत्पन्न होते हैं।

निद्रा के लिए आवश्यक नियम

१. समय पर सोने का नियम बनाइए। इससे निश्चित समय पर अपने आप ही निद्रा आ जाएगी। देर तक जागने से निद्रा में विलम्ब होगा।

२. सोने का स्थान स्वच्छ, हवादार और एकान्त में होना चाहिए जहाँ शोर तथा अन्य किसी प्रकार का व्यवधान न हो।

३. भोजन सोने से २-३ घण्टे पहले कर लेना चाहिए, जिससे भोजन का सोने से पहले पाचन होकर शरीर तथा मन पूर्ण विश्राम कर सके।

४. रात्रि में कमरों में प्रकाश न रहे तो अच्छा है, अथवा हरे या रंग के मध्यम प्रकाशवाले बल्ब जलाने उचित रहते हैं।

५. सोने के वस्त्र ढीले और कम-से-कम होने चाहिए। तंग वस्त्र अथवा जूते-मोज़े पहने हुए ही सो जाने से शरीर को पूर्ण विश्राम नहीं मिल पाता। इससे रक्त संचार में बाधा पड़ती है और शरीर से निकले

www.thearyasamaj.org

विषाक्त तत्त्व पुनः शरीर में अवशोषित हो जाते हैं।

६. ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त किसी भी ऋतु में दिन में सोना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं है। क्योंकि दिन में सोने से कफ की वृद्धि होकर मन्दाग्नि, प्रमेह, रक्त में अम्लता आदि दोष पैदा होते हैं तथा रात्रि में गाढ़ निद्रा आने में बाधा पड़ेगी। परन्तु जिन लोगों को रात्रि में ड्यूटी देनी होती है, अभ्यास से उन्हें दिन में सोना अनुकूल हो जाता है।

७. सोने से पहले मूत्र त्याग करना चाहिए।

८. सोने का बिस्तर अधिक गुदगुदा नहीं होना चाहिए, अन्यथा उष्णता बढ़कर स्वप्नदोष की सम्भावना रहती है तथा मेरुदण्ड को पूर्ण विश्राम न मिलने से कटि-पीड़ा और ग्रीवा की अस्थि-वृद्धि होने लगती है। जहाँ तक हो सके, तख्त या लकड़ी के फट्टे को चारपाई पर डालकर सोने का अभ्यास करना चाहिए। चारपाई पर प्रायः सीधा सोने से कमर और ग्रीवा में पीड़ा तथा मुख खुला रहने के कारण नाक की हड्डी बढ़ जाती है। इसलिए करवट के बल सोने का अभ्यास करना चाहिए। सीधा सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

९. जहाँ तक सम्भव हो, उत्तर दिशा में शिर करके नहीं सोना चाहिए। पूर्व या दक्षिण दिशा में सिर रहे तो अच्छा है।

१०. सोते समय मुख को कपड़े से ढकना नहीं चाहिए। यदि आवश्यकता है तो शिर पर पृथक् कपड़ा लपेट लेना ही पर्याप्त है। शिर को कसकर नहीं बाँधें।

११. सोते समय सब प्रकार की चिन्ता या मानसिक तनाव से मुक्त होकर परमेश्वर का नाम स्मरण करते हुए, अथवा अपने संकल्प को दोहराते हुए कि मुझे अपने जीवन में इतनी उन्नति करनी है, सोना चाहिए।

अतिनिद्रा को दूर करना

१. जिनको कफ प्रकृति या शरीर में चर्बी बढ़ जाने से निद्रा अधिक आती है उन्हें वमन, विरेचन, उपवास, नस्य और कफ को शमन करनेवाले उपाय करने चाहिएँ।

२. जिन लोगों को कब्ज़ के कारण आलस्य या शरीर में भारीपन रहता है, उन्हें पेट साफ़ करने के लिए त्रिफलादि का हल्का विरेचन लेना चाहिए तथा शीतल जल से स्नान, हल्का व्यायाम, आसन, प्राणायम करने हितकर हैं।

३. कठोर बिस्तर पर शयन, बड़े कार्य की ज़िम्मेदारी, सात्विक भोजन, जीवन में उच्च बनने का संकल्प, चिन्तन-मनन से अतिनिद्रा को नियन्त्रित किया जा सकता है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ हैं - ईश्वर-चिन्तन, वेदाध्ययन और वीर्यरक्षण। पहले वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी को ब्रह्मचारी कहते थे। ब्रह्मचर्य और विद्यार्थी का परस्पर सम्बन्ध है। शुक्राचार्य ने कहा है - '**विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्**' अर्थात् विद्या पढ़ने वाले को ब्रह्मचर्यपालन करना आवश्यक है। बिना मन और इन्द्रियों पर संयम किए वेद का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है, तथा वेदशास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को समझे बिना ईश्वर-प्राप्ति करना कठिन है। इसलिए '**एकै साधे सब सधे**' इस लोकोक्ति के अनुसार इन्द्रिय-संयम द्वारा वीर्य रक्षा करना ही बाद में ब्रह्मचर्य का अर्थ लोक में प्रचलित हो गया।

हम जो भोजन करते हैं, उसके सार-भाग से रस बनता है। रस का परिपाक होकर, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और सातवीं धातु वीर्य का निर्माण होता है। स्त्रियों में यह धातु रज के रूप में बनती है। यह सब धातुओं का सार है। इसी की रक्षा करना प्रत्येक विद्यार्थी,

www.thearyasamaj.org

युवक एवं युवती का कर्तव्य है। सब सुधारों का सुधार ब्रह्मचर्य है। प्रखर बुद्धि, चमकता हुआ मुखमण्डल, उन्नत वक्षःस्थल, सुगठित शरीर, मस्तानी चाल, गम्भीर और प्रभावशाली वाणी, आकर्षक व्यक्तित्व, उत्साह, स्फूर्ति, शौर्य, धैर्य इत्यादि सभी गुणों की खान ब्रह्मचर्य का पालन ही है। ब्रह्मचारी के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अथर्ववेद में कहा है –

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।'

'ब्रह्मचर्यरूप तप के द्वारा विद्वानों ने मृत्यु को दूर भगा दिया।' भीष्म पितामह की आयु महाभारत के युद्ध में १७५ वर्ष की थी। उन्होंने १० दिन तक अकेले ही सेनापति का पद सँभालते हुए घमासान संग्राम किया। अन्त में १०वें दिन अर्जुन तथा अन्य योद्धाओं के तीरों से आहत होकर शर-शैया पर लेट गए। मृत्यु बार-बार आना चाहती है, परन्तु ब्रह्मचारी भीष्म उसे ठोकर मारते हैं और कहते हैं –'अभी सूर्य दक्षिणायन में है। सूर्य के उत्तरायण में आने पर ही मैं प्राण त्याग करूँगा, इससे पूर्व नहीं।' यह सब ब्रह्मचर्य का ही तो प्रताप था।

ब्रह्मचारी हनुमान् का नाम कौन नहीं जानता! उन्होंने ब्रह्मचर्य के बल से समुद्र को पार कर सीता का पता लगाया। अकेले ही लंका को जला के सुरक्षित लौट आए। लक्ष्मण के रणभूमि में मूर्च्छित हो जाने पर संजीवनी बूटी को लाना उन्हीं द्वारा सम्भव हो सका। युद्धभूमि में उनका सामना एक बार रावण से हुआ। रावण को देख वीरवर हनुमान् ने रावण की छाती में मुष्टि का एक प्रबल प्रहार किया। रावण उस आघात को सहन नहीं कर सका। वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। जब उसे होश आया तो उसने हनुमान् की स्तुति की। हनुमान् ने कहा – 'ऐ रावण! तुम मेरी स्तुति व्यर्थ में क्यों करते हो? धिक्कार है मेरे मुष्टि-प्रहार को जो तुम अभी तक जीवित हो! इस बार तुम्हें अवसर दिया जाता है। पहले तुम प्रहार करो! और याद रखो मेरे द्वारा प्रहार करने पर तुम जीवित नहीं बचोगे।' रावण ने क्रोध में आकर हनुमान् की छाती में प्रबल आघात किया। वज्र के समान शरीर के धनी हनुमान् जी उस आघात से विचलित हो गए, परन्तु शीघ्र ही सँभलकर उन्होंने रावण को ललकारा। इससे पहले कि वे रावण पर मुष्टि-प्रहार करते, रावण ने उनके सामने से हट जाना ही उचित समझा। यह था ब्रह्मचर्य का बल, जिससे भयभीत होकर रावण-जैसा योद्धा भी मुकाबले से हट गया।

महर्षि दयानन्द जी जालन्धर में ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान दे रहे थे। उनका व्याख्यान सुनकर रईस विक्रमसिंह ने कहा – 'स्वामी जी! आपने आज ब्रह्मचर्य की बहुत प्रशंसा की, परन्तु आपमें तो वह बल दिखलाई नहीं दे रहा? स्वामी जी यह बात सुनकर चुप रहे। जब सरदार विक्रमसिंह जी बग्घी में बैठकर अपने घर को जाने लगे तो स्वामी दयानन्द जी ने चुपके से आकर एक हाथ से बग्घी का पहिया पकड़ लिया। गाड़ीवान ने घोड़ों को चाबुक मारे, परन्तु घोड़े टस से मस नहीं हुए। दोबारा चाबुक लगाए जाने पर घोड़ों ने ज़ोर लगाया। उनके दोनों अगले पैर खड़े हो गए, परन्तु गाड़ी फिर भी नहीं हिली। सरदार विक्रमसिंह ने पीछे मुड़कर देखा – स्वामी दयानन्द जी एक हाथ से गाड़ी का पहिया पकडे मुस्करा रहे थे। विक्रम सिंह को अपनी भूल का अनुभव हुआ। उन्होंने नीचे उतरकर स्वामी जी के पैर पकड़ लिये और अपनी बात के लिए क्षमा-याचना की।

जोधपुर राज्य में स्वामी जी को भयंकर हलाहल विष दिया गया। इससे पहले भी उनको अनेक बार विष दिया गया, परन्तु उन्होंने यौगिक क्रियाओं द्वारा विष निकाल दिया। इस बार दूध संखिया मिलाकर पिलाया गया। सारे शरीर में दाने हो गए। प्रतिदिन सैकड़ों दस्त आने लगे। चिकित्सा के नाम पर भी प्रतिकूल औषध दी गई। शरीर फोड़कर विष बाहर निकलने लगा। अंग्रेज़ डॉक्टर आया और बोला – 'ऐसा भयंकर विष दिया गया है कि यदि किसी और व्यक्ति को दिया जाता तो कुछ ही समय में उसका प्राणान्त हो जाता। परन्तु इस

www.thearyasamaj.org

कालकूट विष से भी स्वामी जी एक मास तक संघर्ष करते रहे।' अन्त में दीपावली के दिन स्नान, क्षौरकर्मादि के उपरान्त समाधि लगाकर स्वेच्छा से शरीर का त्याग किया।

वनवास के समय अर्जुन इन्द्र के पास शस्त्रास्त्र की शिक्षा लेने के लिए गए। एक दिन उसके रूप और यौवन पर मुग्ध होकर उर्वशी नाम की अप्सरा उनके पास पहुँची और दरवाज़ा खटखटाया। अर्जुन द्वारा उसके आने का प्रयोजन पूछने पर उर्वशी ने कहा – 'मैं आप-जैसा ही शूरवीर योद्धा पुत्र चाहती हूँ।' अर्जुन ने कहा – 'हे मात! तुम मुझे ही अपना पुत्र मान लो!' उर्वशी लज्जित होकर चली गई। प्रात: जब इन्द्र को इस बात का पता चला तो वे अर्जुन से बहुत प्रसन्न हुए और अनेक दिव्यास्त्रों का रहस्य उन्हें बतलाया। अस्त्रों को पाकर अर्जुन अजेय योद्धा बन गए। ऐसे कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं। ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही आर्यावर्त देश संसार का शिरोमणि बना रहा। सृष्टि के प्रारम्भ से महाभारत तक आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य सारे विश्व पर रहा। महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चारों दिशाओं के राजा बहुमूल्य भेंट लेकर उपस्थित हुए थे।

व्यक्ति के जीवन में धन-सम्पत्ति, विद्या तथा अन्य वस्तुओं की प्राप्ति के अनेक अवसर आते हैं। परन्तु जवानी एक ही बार आती है। १४ से १६ वर्ष की आयु में यौवन रूप धन आने लगता है। किसी के घर में धन-सम्पत्ति आए तो उसे प्रयत्नपूर्वक संभालकर सुरक्षित रखा जाता है जिससे चोर-डाकू उसे चुरा नहीं सकें। इसी भाँति प्रत्येक नवयुवक और युवती को इस अमूल्य जवानी की सुरक्षा करने का हर सम्भव यत्न करना चाहिए। इसकी सुरक्षा करने पर २५ वर्ष में पुरुष और १६ वर्ष में स्त्री पूर्ण युवा हो जाते हैं। फिर इसे कुछ व्यय भी किया जाए तो न्यूनता नहीं होती।

वीर्य शरीर का राजा है। जैसे गन्ने का रस पीड़ लेने पर खोई शेष बच जाती है और तिलों से तेल निकालने पर केवल खली ही अवशिष्ट रहती है, इसी प्रकार ब्रह्मचर्य-रक्षा के बिना शरीर निस्तेज, निर्बल और हड्डियों का पिंजर बन जाता है। जैसे दीपक में तेल होने पर ही प्रकाश होता है, ऐसे ही सुरक्षित वीर्य की ऊर्ध्वगति होकर वह विचाराग्नि का ईंधन बन बुद्धि को प्रकाशित करता है।

ब्रह्मचर्य-पालन के लिए नियम

१. प्रात:काल जागरण से लेकर रात्रि तक सारे समय को विभिन्न कार्यों के लिए निश्चित करके उसके अनुसार चलना चाहिए। कभी खाली नहीं बैठें, क्योंकि खाली मन ही शैतान का घर होता है। दिनचर्या नियमित हो।

२. प्रतिदिन व्यायाम के लिए कुछ समय अवश्य निकालिए। व्यायाम से शरीर की शक्ति का पुन: शरीर में अवशोषण होकर वह शरीर को स्फूर्ति, कान्ति, बल, तेज प्रदान करती है। बिना व्यायाम के ब्रह्मचर्य-पालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

३. भोजन सात्विक होना चाहिए। भोजन में मिर्च, मसाले, तेल, खटाई तथा अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग करे।। इसी भाँति शराब, भाँग, गांजा, अफ़ीम, हेरोइन इत्यादि मादक वस्तुओं से भी बचना चाहिए।

४. मन को विक्षिप्त करने वाले दृश्य, चलचित्र, नृत्य गीत, उपन्यास, कथा-कहानी को देखना और पढ़ना छोड़ दें।

५. ब्रह्मचर्य-रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त-सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा को प्राप्त होवें (सत्यार्थ प्रकाश)।

www.thearyasamaj.org

६. कुसंगति से बचें। यदि कोई चरित्रवान् साथी नहीं मिलता तो अपने माता-पिता के साथ ही रहें। किसी महापुरुष का जीवन-चरित्र अथवा चरित्र को ऊँचे उठाने वाले ग्रन्थों का स्वाध्याय करें।

७. जहाँ तक हो सके, एकान्त में नहीं रहें। हर समय काम में लगे रहें और अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उसकी प्राप्ति के लिय अहर्निश प्रयत्न करें।

८. सादगी का जीवन व्यतीत करें। फैशन, श्रृंगार तथा अन्य विलासिता की वस्तुयें ब्रह्मचर्य में बाधक हैं। याद रखें - सादगी सदाचार को जननी तथा श्रृंगार व्यभिचार का दूत है।

९. २५ वर्ष से पूर्व विवाह न करें। ब्रह्मचर्य का नाश करने वाला जितना बाल विवाह है, उतना अन्य नहीं।

१०. ईश्वर चिन्तन ही ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है इसीलिये प्रतिदिन सन्ध्या जप, स्वाध्याय करना चाहिये।

दिनचर्या

प्रात: जागरण

कल्याण की इच्छा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रात:काल ४ बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाना चाहिए। इस समय शान्त वातावरण, शुद्ध और शीतल वायु रहने के कारण सात्विक विचार, मन में उत्साह और शरीर में स्फूर्ति रहती है। जो व्यक्ति प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाता है, उसका दिन सुख से व्यतीत होता है। बच्चे शीत ऋतु में ५ बजे भी उठ सकते हैं। किसी भी स्थिति में सूर्योदय के १ घण्टा पहले तो उठ ही जाना चाहिए। यदि किसी दिन आवश्यक कार्यवश रात्रि में कुछ अधिक समय तक जागना पड़े, तब भी प्रात:काल निश्चित समय पर उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त होने के पश्चात् पुन: विश्राम लिया जा सकता है। अथर्ववेद में एक मन्त्र आया है जिसका भाव यह है कि जो व्यक्ति सूर्य उदय होने तक सोता है, उसके ओज-तेज को सूर्य की किरणें पी जाती हैं।

प्रात:काल उठकर जो व्यक्ति व्यायाम करता है वह बलवान्, धन कमाने वाला धनवान्, पढ़ने वाला विद्वान् और परमात्मा की भक्ति करने वाला सिद्ध योगी बनता है। इसके विपरीत जो सोता रहता है, वह सभी कुछ खो देता है।

हर रात के पिछले प्रहर में,
इक दौलत लुटती रहती है।
जो जागत है सो पावत है,
जो सोवत है सो खोवत है।

प्रात:काल समय पर उठने के लिए रात्रि में समय पर सोना आवश्यक है। जिनकी आँखें प्रात: नहीं खुलतीं, उन्हें रात को मन में यह संकल्प करके सोना चाहिए कि मैं प्रात: ठीक चार बजे उठ जाऊँगा। यह संकल्प मन में लेकर सोने से आपकी आँखें स्वत: ही खुल जाएँगी। जो ऐसा नहीं कर सकते, वे अलार्म घड़ी, मुर्गे की बाँग या माता-पिता के सहयोग से चार बजे उठ सकते हैं। थोड़े दिनों में आपका स्वत: ही अभ्यास हो जाएगा।

प्रात: उठते ही ईश्वर का स्मरण करें और अपने से बड़ों के चरण-स्पर्श तथा परस्पर-अभिवादन करें। यह हमारी प्राचीन परम्परा है। 'रामचरित मानस' में लिखा है-

प्रात काल उठि के रघुनाथा।
मात पिता गुरु नांवहि माथा।।

अर्थात् राम-लक्ष्मणादि चारों भाई प्रात:काल उठकर अपने माता-पिता और गुरु के चरण स्पर्श करते थे।

उष:पान

प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम शीतल जल से मुख-प्रक्षालन करना चाहिए। इससे आलस्य दूर होता

www.thearyasamaj.org

है। मुख में पानी भरकर शीतल जल के छींटे नेत्रों पर मारें। इससे नेत्र-ज्योति बढ़ती है। इसके पश्चात् रात्रि में ताम्बे के पात्र में ढँककर रखे गए जल को एक-दो गिलास पीयें, अथवा नाक को साफ़ करके नासिका द्वारा उषःपान करने से नेत्र-ज्योति बढ़ती है तथा सिर-दर्द और नकसीर फूटना, नज़ला, ज़ुकाम की निवृत्ति होती है। यदि शीत ऋतु है तो जल को कुछ गरम करके भी पिया जा सकता है।

आजकल उठते समय बिना कुल्ला किए बिस्तर पर ही चाय (बेड-टी) लेने की कुप्रथा चल पड़ी है जो स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। कुल्ला करने के पश्चात् इसके विकल्प में कुनकुने जल में, नींबू निचोड़कर पीना श्रेष्ठ है। इससे आँतों की धुलाई तथा रक्त की शुद्धि हो जाती है। उषःपान करने से बड़ी आँत पर दबाव पड़कर मल त्याग सरलता से होता है तथा मूत्र द्वारा शरीर की अनावश्यक उष्णता निकल जाती है। आँतों की शुद्धि होकर बहुत-से विजातीय तत्त्व बाहर निष्कासित कर दिए जाते हैं।

शौच

उषःपान के पश्चात् कुछ देर तक टहलना चाहिए अथवा दूर खेतों में जाना अच्छा रहता है। कब्ज़ होने पर दाहिनी ओर से बाईं ओर पेट की हल्की मालिश करें। कटि-प्रदेश को दाहिने-बाएँ मरोड़ें अथवा दीर्घ श्वसन का अभ्यास करना हितकर है। इसके पश्चात् शौच (मलत्याग) के लिए जाना चाहिए। पकी हुई फ़सल, सार्वजनिक उपयोग का स्थान, मार्ग के किनारे तथा नदी-तालाब के तट पर शौच के लिए बैठना अनुचित है। मलत्याग के पश्चात् उसे मिट्टी से ढाँप दें या पहले गड्ढा खोदकर उसे मिट्टी से भर दें। खुले मल पर मक्खियाँ अण्डे देती हैं और दुर्गन्ध भी फैलती है।

यदि घर में ही शौचालय की व्यवस्था है तो कुछ समय टहलने के पश्चात् शौच की इच्छा होने पर उसमें प्रवेश करें। शौच के समय दाँतों की पंक्तियों को दबाकर रखें। इससे दाँत सुदृढ़ बने रहते हैं। जिनका पेट भली-भाँति साफ नहीं होता, उन्हें चाहिए वे बाएँ पैर पर अधिक दबाव डालकर बैठें या बाएँ हाथ की मुट्ठी बन्द करके बाईं ओर के पेट (मलाशय) पर दबाव डालें। इससे मलाशय पर दबाव पड़कर मलत्याग सरलता से हो जाएगा। मलत्याग करते समय अनावश्यक बल लगाना या काँखना अनुचित है।

मलत्याग के पश्चात् शीतल जल से गुदा-द्वार की सफ़ाई मिट्टी लगाकर करें। पश्चात् हाथों को कई बार मिट्टी या साबुन लगाकर प्रक्षालन करें। इसके पश्चात् घुटनों तक दोनों पैरों को शीतल जल से धोएँ। इससे अर्श (बवासीर) नहीं होने पाती। जहाँ तक सम्भव हो, प्रातः और सायं दोनों समय शौच जाने की आदत डालनी चाहिए। दिन-भर में एक बार शौच जाने की स्थिति में आँतों में संचित मल का जलीयांश आँतों में आचूषित होकर रक्त को दूषित करता है।

मुखशुद्धि (दन्त-प्रक्षालन)

शौच से निवृत्त होकर दातुन द्वारा दाँतों की शुद्धि करनी चाहिए। नीम, बबूल, महुआ, करंज और मौलसिरी आदि कडुवे तथा कषैले वृक्षों की दातुन करना श्रेष्ठ है। दातुन की लम्बाई १२ अंगुल तथा मोटाई अपनी कनिष्ठा अँगुली के बराबर होनी चाहिए। दातुन को चबाकर ब्रुश बनाके मसूड़ों को पीड़ित न करते हुए धीरे-धीरे ऊपर से नीचे दातुन करें साथ में कोई अच्छा मंजन या सूक्ष्म पिसा हुआ नमक सरसों के तेल में मिलाकर, उसे दातुन पर लगाकर दाँतों को घिसना चाहिए। इस विधि से दाँतों का मल दूर होकर मुख की विरसता और दुर्गन्ध का निवारण होता है। दातुन के अभाव में यदि ब्रुश ही करना पड़े तो मसूड़ों को बचाते हुए पहली विधि के अनुसार ब्रुश को ऊपर-नीचे लाते हुए सफ़ाई करें। इसके पश्चात् सेंधा नमक में सरसों का तेल मिलाकर अँगुली से मसूड़ों की हल्की मालिश करनी चाहिए।

जिह्वा की सफ़ाई – दातुन को मध्य से चीरकर आधे

www.thearyasamaj.org

भाग को दोनों हाथों में पकड़कर उससे जिह्वा का भीतर से बाहर की ओर घर्षण करें। दातुन के अभाव में चाँदी, ताम्बा, पीतल या स्टील की बनी हुई पत्ती (जीभी) से सफ़ाई करनी चाहिए। इससे जिह्वा पर मैल की जमी हुई सफ़ेद परत दूर होकर जिह्वा हल्की हो जाती है, मुख की अरुची दूर होती है।

तालु एवं गले की शुद्धि - इसके पश्चात् दाहिने हाथ के अंगूठे से तालुप्रदेश, गलसुण्डी (उपजिह्वा) तथा ग्रीवा के पार्श्व-भागों में स्थित गल-ग्रन्थि (टॉन्सिल) की हल्की मालिश करनी चाहिए। मुख नीचे की ओर रखें। चिकनी लार तथा कफ़ को बाहर निकाल दें। नित्यप्रति करने से नज़ला-जुकाम की निवृत्ति होती है। बालों का झड़ना रुक जाता है तथा टॉन्सिल-वृद्धि का रोग नहीं होने पाता। इसके पश्चात् जल से मुख की खूब सफ़ाई करें।

तेल-मालिश

योग-साधना के पश्चात् शारीरिक व्यायाम करने से पहले तेल-मालिश उपयोगी रहती है। इस मालिश के निम्न लाभ हैं -

१. जैसे मिट्टी का घड़ा या चर्म का पात्र घृत या तेल डालने से सुन्दर और दृढ़ हो जाता है, वैसे ही तेल की मालिश करने से शरीर की त्वचा निर्मल, मृदु, सुन्दर तथा सुदृढ़ बन जाती है।

२. धातुओं का पोषण होता है और कफ तथा वात के रोग दूर होते हैं।

३. शरीर की शक्ति बढ़ती है और वृद्धावस्था के लक्षण दूर होते हैं।

४. अनिद्रा रोग दूर होकर नींद अच्छी आती है।

५. दृष्टि निर्मल एवं तीव्र होती है।

६. शरीर क्लेश तथा शारीरिक श्रम सहन करने में समर्थ बन जाता है।

शीत ऋतु में तेल-मालिश प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर, ग्रीष्म ऋतु में सप्ताह में एक बार तथा वर्षा ऋतु में दो सप्ताह में एक बार मालिश करना उचित है। मालिश प्रातःकाल सूर्य के प्रकाश में करनी उचित है। बाल-रवि की किरणें शरीर के अनेक विकारों को दूर करती हैं तथा विटामिन 'डी' की प्राप्ति होती है। कम-से-कम शिर, कान तथा पैरों की मालिश तो प्रतिदिन ही करनी चाहिए।

सिर में तेल-मालिश के लाभ -

१. सिर-दर्द नहीं होगा।

२. बाल सुदृढ़, काले और दीर्घ होते हैं।

३. मुखमण्डल कान्तियुक्त हो जाता है तथा चेहरे की झुर्रियाँ मिट जाती हैं।

४. व्यक्ति को गाढ़ी निद्रा आती है।

सिर की मालिश के लिए बादाम रोगन, काहू का तेल या चक्र तेल उपयुक्त है। अभाव में सरसों का, तिल या नारियल का तेल भी प्रयोग किया जा सकता है।

कान की दैनिक मालिश करने के लाभ -

१. वायु से उत्पन्न समग्र कर्ण-रोगों का नाश होता है।

२. बहरापन नहीं आता।

३. दूर के शब्द सुनने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

४. शिरःशूल, हनुग्रह और ग्रीवा का अकड़ जाना इत्यादि वात-विकार शान्त हो जाते हैं।

'एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति' की मान्यतानुसार कान तथा उसके समीप के प्रदेश में अनेक बिन्दु स्थित हैं जिन पर दबाव डालने या मालिश करने से विविध रोगों का शमन होता है।

कान की मालिश तर्जनी अंगुली और अंगूठे की सहायता से धीरे-धीरे करनी चाहिए। कभी-कभी कान में गर्म तेल डालना भी हितकारी होता है।

www.thearyasamaj.org

पैरों का मालिश से लाभ -

१. पैरों की रूक्षता, कठोरता, थकान और पैर का सो जाना इत्यादि कष्ट दूर होते हैं।

२. देर तक चलते रहने से भी पाँव नहीं थकते।

३. बिवाई फटना, गृधसी तथा अन्य वात रोग शमन होते हैं।

४. दृष्टि-शक्ति की वृद्धि होती है।

५. सुखपूर्वक निद्रा आती है।

मालिश करने की पद्धति

इसके अन्तर्गत मर्दन, संवाहन (दबाना), उत्सादन (पैरों से शरीर को दबाना या मर्दन करना), गोलाकार मालिश, थपथपाना, गोंदना और शरीर को सूँतना आदि विविध क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

मालिश के अयोग्य व्यक्ति - कफ़, नज़ला, ज़ुकाम, से पीड़ित, वमन या रेचक की औषध लेने की स्थिति में, अजीर्ण तथा ज्वर का वेग होने पर मालिश करना निषिद्ध है।

सूखी मालिश - तेल के स्थान पर स्नान करने से पहले खुरदरे तौलिए या ब्रश से सारे शरीर का घर्षण करना भी बहुत लाभकारी है। ऐसे ही स्नान करते समय खद्दर के मोटे कपड़े से सारे शरीर का घर्षण करके मैल को उतार देना चाहिए। शरीर को इतना रगड़ें कि त्वचा लाल हो जाए। इससे सारे शरीर में रक्त का संचार होकर शरीर लावण्ययुक्त, हल्का और स्फूर्तिमय हो जाता है।

इस भाँति स्नान करने के पश्चात् शरीर का पानी हाथों की मालिश करके सुखाने से भी मालिश - जैसा लाभ होता है।

व्यायाम

शरीर की वह क्रिया जो स्थिरता और बल की वृद्धि करनेवाली हो, उसे व्यायाम कहते हैं।

व्यायाम से निम्न लाभ होते हैं -

१. शरीर की वृद्धि होती है।

२. त्वचा की कान्ति (चमक) बढ़ती है।

३. शरीर के अंग-प्रत्यंग सुगठित बनते हैं।

४. पाचन-शक्ति की वृद्धि होती है।

५. आलस्य दूर हो जाता है।

६. कार्य करने का सामर्थ्य बढ़ता है।

७. शरीर का भारीपन (मोटापा) दूर होता है।

८. शरीर के स्नायु, जोड़ तथा मांसपेशियाँ लचीली बनती हैं।

९. भारी परिश्रम तथा सर्दी-गर्मी को सहन करने की शक्ति बढ़ती है।

१०. शरीर की रोग-निरोधक शक्ति बढ़कर अनेक रोगों के आक्रमण से सुरक्षा होती है।

११. स्थूलता और चर्बी को घटाने का यह सर्वोत्तम साधन है।

१२. शरीर का बल एवं सामर्थ्य बढ़ने से शत्रु बलपूर्वक विजय नहीं पा सकते।

१३. सर्वथा कुरूप व्यक्ति भी व्यायाम के अभ्यास से दर्शनीय बन जाते हैं।

१४. वृद्धावस्था से उत्पन्न कष्टों का निवारण होता है।

१५. व्यायाम से गरिष्ठ तथा प्रकृति-विरुद्ध भोजन भी सुखपूर्वक पच जाता है।

व्यायाम की मात्रा : शीतकाल और वसन्त ऋतु में अपनी आधी शक्ति लग जाए, इतना व्यायाम करना पर्याप्त है। ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में शक्ति का चतुर्थांश ही व्यायाम करना चाहिए।

शक्ति का परिमाण - व्यायाम करते समय व्यक्ति जब हाँफने लगे, मुख सूख जाए, मुख से श्वास लेना पड़े, मस्तक, कुक्षि (बगल) एवं छाती पर पसीने की बूँदें झलकने लगे, शरीर हल्का हो जाए तथा हृदय की

www.thearyasamaj.org

गति बहुत अधिक बढ़ जाए तो समझो कि शरीर की आधी शक्ति लग चुकी।

स्नान

व्यायाम करने के पश्चात् जब पसीना सूख जाए, श्वास-प्रश्वास और नाड़ी की गति सामान्य चलने लगे, तब स्नान करना उचित है। स्नान से पहले पेशाब कर लेना चाहिए। इससे मसाने की गर्मी निकल जाती है।

सभी ऋतुओं में ताज़ा और शीतल जल से स्नान करना ही हितकर है। यदि जल अधिक ठण्डा हो तो उसमें कुछ गर्म जल मिला लें। रोगी व्यक्ति को ही सिर को बचाकर, निर्वात स्थान पर गर्म जल से स्नान करने का विधान किया है। सिर पर उष्ण जल डालने से बुद्धि-दौर्बल्य, दृष्टि में न्यूनता तथा बाल जल्दी सफ़ेद होने की सम्भावना रहती है। पहले सिर पर जल डालें, पश्चात् सारे शरीर पर डालकर हाथ या तौलिये की सहायता से सारे मल को पृथक् कर दें। साबुन का प्रयोग प्रतिदिन करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं है। साबुन के स्थान पर हल्दी, चने का आटा और दही या तेल को मिलाकर उबटन बना, सारे शरीर पर मलें अथवा तौलिये को जल में भिगोकर उससे सारे शरीर को रगड़ें। इसी भाँति स्वच्छ नदी, तालाब या समुद्र में स्नान करना तथा तैरना भी स्वास्थ्यप्रद है। ग्रीष्म ऋतु में प्रातः-सायं दोनों समय, तथा अन्य ऋतुओं में प्रातःकाल स्नान करना चाहिए।

स्नान के निम्न लाभ हैं -

१. शरीर की दुर्गन्ध, पसीना, भारीपन, आलस्य, दाह तथा मैल की निवृत्ति होती है।

२. पाचन-शक्ति की वृद्धि होती है।

३. आयु, साहस और शारीरिक बल बढ़ता है।

४. निद्रा का निवारण होता है।

५. मन प्रसन्न रहता है तथा दिनभर कार्य करने का मन में उत्साह बना रहता है।

६. शीतल जल से वीर्य की वृद्धि और रक्त की शुद्धि होती है।

७. शरीर और मन के पापों का निवारण होता है।

स्नान किनको नहीं करना चाहिए -अतिसार के रोगी, ज्वरग्रस्त, कान में पीड़ा वाले, वात रोगी, अफारा वाले, अरुचि और अजीर्णग्रस्त, जिन्होंने अभी भोजन किया हो, तथा आँख और मुख के रोगियों को स्नान करना हितकर नहीं है। ऐसे व्यक्ति जल में तौलिया भिगोकर उससे शरीर को पोंछ सकते हैं।

वस्त्र-धारण

स्नान करने के पश्चात् रोएँदार या खद्दर के तौलिए से सारे शरीर की खूब सफाई करके पानी को सुखा दें और पुनः स्वच्छ वस्त्र धारण करें।

स्वच्छ वस्त्र-धारण के लाभ -

१. मन में उत्साह और संकल्प-शक्ति का विकास होता है। फलतः मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति होती है।

२. सर्दी, गर्मी, वर्षा से रक्षा होकर आयु की वृद्धि होती है।

३. व्यक्तित्व निखर जाता है।

४. चित्त प्रसन्न रहता है।

५. सभ्य समाज में प्रवेश एवं सम्मान मिलता है।

परन्तु वस्त्रों का धारण लज्जा-निवारण के लिए और देश, काल तथा कार्य के अनुसार ही होना चाहिए। हमारे देश का जलवायु सम-शीतोष्ण होने के कारण यहाँ सूती और कुछ ढीले वस्त्रों को पहनना ही स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक है। कृत्रिम रेशे से निर्मित वस्त्र चर्म-रोगों को उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार भड़कीले वस्त्र पहनना या एक्टरों की नकल करके फ़ैशन बदलते

www.thearyasamaj.org

रहना भी बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं है। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि 'सादगी' सदाचार की जननी है और 'श्रृंगार' व्यभिचार का दूत है।

देवपूजा

वस्त्र धारण करने के पश्चात् सन्ध्या, यज्ञ, भजन, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, घर पर आए अतिथि, विद्वान् और परिवार के वृद्धजनों की सेवा, पूजा, सम्मान यथाविधि करना चाहिए। इन कार्यों से जीवन में सफलता मिलती है और परलोक सुधरता है। मनु महाराज कहते हैं –

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्।।

जो प्रतिदिन माता, पिता, गुरु, आचार्य आदि वृद्धजनों को अभिवादन तथा उनकी सेवा व सत्संग करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चार बढ़ते हैं।

उपर्युक्त दिनचर्या सभी के लिए ग्रहण करने योग्य है। इसमें दो-ढाई घण्टे का समय लगता है। इसके पश्चात् यदि समय बचता है तो अपना पढ़ने-लिखने का कार्य पूरा किया जा सकता है। यदि विद्यालय, नौकरी या अन्य कार्य के लिए जाना है तो प्रातराश (अल्पाहार) लेकर दैनन्दिन कार्यों में लग जाएँ, अथवा स्वाध्याय करें। प्रातःकाल स्वाध्याय के लिए समय नहीं मिलता तो सायंकाल समय निश्चित करके नियमित स्वाध्याय प्रारम्भ करें।

आसन

१. उत्तानपादासन

विधि

१. पीठ के बल लेट जाइए। इस स्थिति में हथेलियाँ भूमि की ओर, हाथ सीधे तथा दोनों पैर सीधे रखकर एड़ी, पंजे मिले हुए रहेंगे। पैरों की अंगुलियाँ पीछे की ओर खिंची हुई रहें।

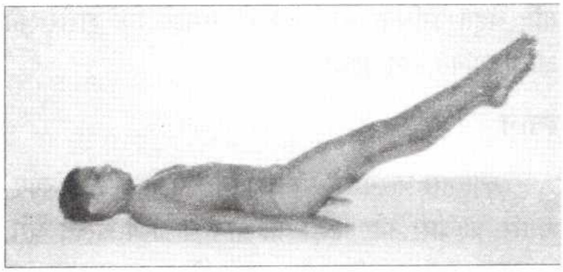

२. श्वास भरकर पैरों को ३०° तक धीरे-धीरे उठाइए।

३. कुछ समय तक इस स्थिति में रहने के पश्चात् श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे पैर भूमि पर वापस टिकाइए।

४. इस क्रिया को पूर्वोक्त विधि से तीन बार कीजिए।

लाभ – इस आसन से पेट की दोनों समौदरी मांसपेशियाँ सबल बनती है। जिससे आँतों के विकार, नाभि का टलना, गैस बनना इत्यादि रोग दूर होते हैं। बड़ी आँत सक्रिय होकर कब्ज मिटती है। पेट का मोटापा कम होता है। आमाशय सबल बनता है। इसके अतिरिक्त कटि के निम्न भाग में होनेवाली पीड़ा को भी दूर करने में सहायक है।

२. सर्वांगासन

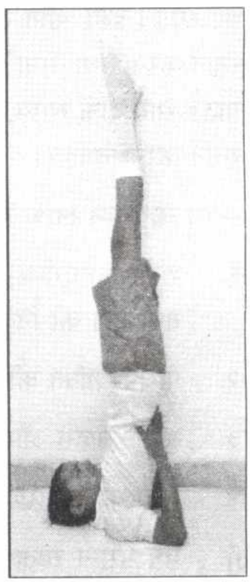

इस आसन से थायरायड (चुल्लिका) ग्रन्थि विशेष रूप से प्रभावित होती है। इसके ठीक कार्य करने से शरीर की अन्य बहुत-सी क्रियाएँ व्यवस्थित हो जाती हैं। सम्भवतः इसी कारण इसका नाम सर्वांगासन पड़ा है।

विधि

१. आसन पर पीठ के बल सीधे लेट जाइए। पैर मिले हुए और हाथ

www.thearyasamaj.org

बगल में शरीर से सटे हुए, हथेलियाँ भूमि की ओर रहेंगी। शरीर में तनाव न होकर शिथिलता रहेगी। सीधे लेटकर किये जाने वाले सभी आसन इसी स्थिति में प्रारम्भ किये जाएँगे।

२. धीरे-धीरे पैरों को (पंजे खिंचे हुए) ३० डिग्री तक ऊपर उठाकर कुछ सैकिण्ड उसी स्थिति में विश्राम कीजिए। इसके पश्चात् पैरों को क्रमशः ६० और ९० डिग्री ऊँचा उठाइए। प्रारम्भ में धीरे-धीरे अभ्यास करने में कठिनाई होती है। इसके निवारणार्थ दोनों हाथों से भूमि को दबाइए। झटके के साथ एकदम पैरों को ऊपर उठाना उचित नहीं है।

३. पैर समकोण तक उठाने के पश्चात् कटिप्रदेश को ऊपर उठाइए। इस कार्य में दोनों हाथों को कुहनियों से मोड़कर पीठ का सहारा दीजिए। पीठ को इतना ऊपर उठाइए कि ठुड्डी कण्ठकूप में लग जाए और सारा शरीर समकोण की स्थिति में आ जाए। हाथों को जितना नीचा करके कमर को पकड़ा जाएगा शरीर उतना ही सीधा रहेगा। आँखें बन्द रहनी चाहिए। जो ऐसा नहीं कर सकें उसे दृष्टि पैरों के अंगूठे पर जमानी चाहिए।

४. वापस आने के लिए पैरों को पीछे मोड़िए, परन्तु घुटने सीधे रहेंगे। दोनों हाथों को पीठ सीधा करके हथेलियों से भूमि को दबाएँ।

५. धीरे-धीरे कटि को भूमि पर टिकाते हुए ९० डिग्री के कोण पर पैरों को ले-जाइए। कुछ विश्राम करके ६० डिग्री फिर ३० डिग्री का कोण बनाते हुए पैरों को भूमि पर टिका दीजिए और शवासन में कुछ समय विश्राम कीजिए।

लाभ - थायरायड ग्रन्थि सक्रिय एवं स्वस्थ रखने के लिए सर्वांगासन का विशिष्ट स्थान है। इस ग्रन्थि का स्वस्थ रहना सारे शरीर का स्वस्थ रहना है। थायरायड ग्रन्थि के स्राव से एड्रिनल और शुक्रग्रन्थि तथा स्त्रियों की डिम्बग्रन्थियाँ सबल बनती हैं। वे युवक जिनके अण्डकोष बचपन की भूलों या अन्य कारणों से विकसित नहीं हुए, सर्वांगासन के नियमित अभ्यास द्वारा लाभान्वित हो सकते हैं।

३. मत्स्यासन

सर्वांगासन के पश्चात् मत्स्यासन करना चाहिए। इससे ग्रीवा के कशेरू और मांसपेशियाँ आगे-पीछे खिंचने से लचकीली और सुदृढ़ बन जाती हैं। इस आसन में बिना हाथ-पैर हिलाये पानी में तैरा जा सकता है। मछली की भाँति जल में तैरने से ही इसे मत्स्यासन कहते हैं।

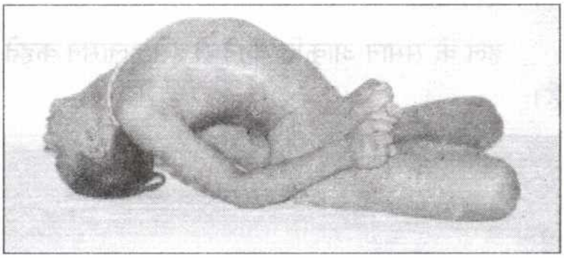

विधि

१. दोनों पैर लम्बे करके बैठिए। दोनों हाथ कमर के साथ भूमि पर टिके हुए रहेंगे। इसे लम्बी बैठी स्थिति या दण्डासन कहते हैं।

२. दाहिने पैर को बायीं जाँघ पर और बाएँ पैर को दाहिनी जाँघ पर रखिए। यह पद्मासन जैसी स्थिति बन जाएगी।

३. दोनों हाथों से सहारा लेते हुए पीछे लेट जाइए। ग्रीवा को जितना पीछे मोड़ सकें मोड़िए। पीठ और छाती ऊपर को उठकर कमान जैसी आकृति बन जाएगी। घुटने भूमि पर टिके हुए रहेंगे।

४. हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़कर कुहनियाँ भूमि पर टिकाइए।

५. आसन छोड़ने के लिए ग्रीवा और कमर को भूमि पर टिकाते हुए पैरों को भी सीधा करके शवासन की स्थिति में आ जाइए।

www.thearyasamaj.org

लाभ - यह आसन सर्वांगासन का पूरक है। जो लाभ सर्वांगासन से ग्रीवा को मिलते हैं वे मत्स्यासन में भी प्राप्त होते हैं सर्वांगासन का पूरा लाभ उठाने के लिए तृतीयांश समय तक मत्स्यासन करना चाहिए। इससे श्वसन-मार्ग भी खुल जाता है जिससे दमा के रोगियों को लाभ होता है। ग्रीवा की हड्डी बढ़ने पर इसका अभ्यास उपयोगी है।

इस आसन से नाभि टलना दूर होता है। इसके लिए ग्रीवा को न मोड़कर शिर, ग्रीवा और घुटने भूमि में टिकाकर रखते हैं। हाथ पीछे की ओर सीधे रहेंगे।

४. हलासन

हल के समान आकृति बनने से इसे हलासन कहते हैं।

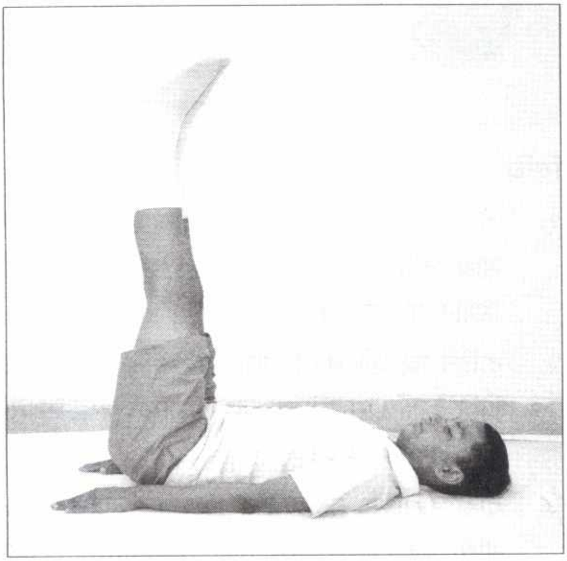

विधि

१. पीठ के बल लेटकर सर्वांगासन की भाँति पैरों को क्रमशः ३०°, ६०°, ९०° अंश तक उठाइए। इसे अर्ध हलासन कहते हैं।

२. हाथों से भूमि को दबाते और पीठ को भूमि पर टिकाते हुए पैरों को सिर की ओर पीछे ले जाइए यहाँ तक कि पैरों के पंजे पीछे भूमि पर टिक जाएँ

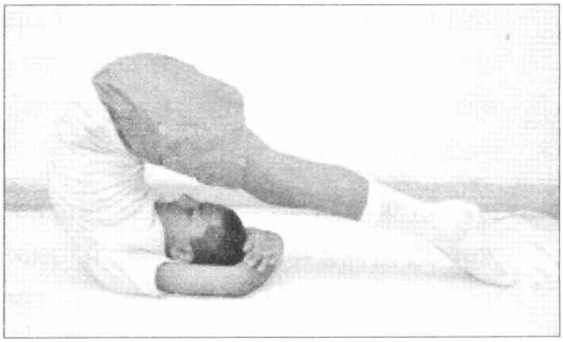

और घुटने सीधे रहकर सिर के ऊपर रहें। केवल पृष्ठ का पिछला भाग ही मुड़ा हुआ रहेगा। इसका अभ्यास प्रारम्भ में कठिन पड़ता है।

३. दूसरी स्थिति में कुछ समय रुककर धीरे-धीरे पैरों के अंगूठे पीछे की ओर बढ़ाएँ, इस अवस्था में पीठ क्रमशः मुड़ती जाएगी। दबाव केन्द्र मेरुदण्ड के ऊपरी भाग के निचले क्षेत्र में रहेगा।

४. अब पैरों को जितना पीछे हो सके, उतना पीछे कीजिए। दबाव का केन्द्र कन्धों के पास रहेगा।

५. दोनों हाथों को बाँधकर सिर के पीछे रक्खें और पैरों के अंगूठों को और पीछे धकेलिए। हाथ पृष्ठ के पीछे या सिर की ओर सीधे भी किये जा सकते हैं। ठुड्डी छाती से लगी हुई और पीठ समकोण तक ऊपर उठी हुई रहेगी। दबाव का केन्द्र मेरुदण्ड के ग्रीवा प्रदेश पर रहेगा।

६. जैसे आये थे वैसे ही पहले हाथों को पीछे टिकाकर भूमि को दबाइए और पहले पीठ को भूमि पर क्रमशः टिकाकर पैरों को समकोण की स्थिति में ले आइए। कुछ समय विश्राम करके ६०-३० अंश पर पैर लाते हुए शवासन की स्थिति में आ जाइए।

लाभ - हलासन से मेरुदण्ड लचकीला बनता है। इसमें स्थित नाड़ियों में रक्त संचार होकर वे स्वस्थ होती हैं। रीढ़ की हड्डी का लचकीला होना ही स्वास्थ्य और उनका कठोर होकर न मुड़ना ही बुढ़ापे के लक्षण हैं।

www.thearyasamaj.org

पृष्ठवंश की मांसपेशियाँ विस्तृत और पेट की मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं। थायरायड ग्रन्थि भी प्रभावित होती है।

इस आसन से अजीर्ण, पेट में गैस बनना, कब्ज, तिल्ली, यकृत् की वृद्धि इत्यादि रोग दूर होते हैं, परन्तु अधिक बढ़ी हुई तिल्ली और यकृत् में यह हानिकारक है। अग्न्याशय पर दबाव पड़कर इंसुलिन का निर्माण होता है, अत: मधुमेह के लिए बहुत हितकर है। स्त्रियों के कष्टार्तव को दूर करता है।

५. भुजङ्गासन

फन उठाये हुए कृष्णसर्प के समान आकृति बनने से इसे भुजङ्गासन या सर्पासन कहते हैं।

विधि

१. पेट के बल आसन पर लेट जाइए। सिर का अगला भाग भूमि पर टिका हुआ रहेगा। पैरों के पंजे लम्बे होकर भूमि पर टिकने चाहिएँ। एड़ियाँ और घुटने भी मिले हुए रहें। दोनों हाथों की कुहनियाँ मुड़ी हुई ऊपर की ओर तथा अंगुलियाँ कन्धों के नीचे रखकर दोनों भुजाएँ कमर से लगी हुई रहनी चाहिएँ।

२. धीरे-धीरे ठुड्डी को ऊपर उठाते हुए ग्रीवा को जितना हो सके पीछे की ओर मोड़िए। इसी प्रकार छाती और पेट को ऐसे उठाइए कि मेरुदण्ड की प्रत्येक कशेरू क्रमश: मुड़ती जाए। पेट नाभि तक ऊपर उठेगा और नाभि से निचला भाग भूमि पर टिका हुआ रहेगा। अभ्यस्त हो जाने पर हाथों को भी ऊपर उठाइए या नाममात्र का सहारा लीजिए।

३. १०-१५ सैकिण्ड के पश्चात् जैसे आये थे वैसे ही पेट, छाती, ग्रीवा सीधी करते हुए ठुड्डी को भूमि पर टिकाकर मकरासन में विश्राम कीजिए।

यह अभ्यास ३-४ बार किया जा सकता है। प्रारम्भ में श्वास जैसे चलता है वैसे ही चलने दीजिए। अभ्यास होने पर श्वास को रोककर करना अच्छा है। इस आसन से कटि पीड़ा, भोजन के पश्चात् गैस बनना और स्त्री-रोगों में लाभ होता है।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ - इस आसन से एड्रीनल ग्रन्थि के ऊपर के भाग की टोन सुधरकर एड्रीनल हारमोन का स्राव होता है। यह हारमोन शक्ति एवं स्फूर्ति को बढ़ाता है। उदर में धनात्मक दबाव बढ़कर गुर्दों को दबाता है। आसन के अन्त में रक्त का प्रवाह अधिक मात्रा में पहुँचकर गुर्दों का स्वास्थ्य सुधरता है। गुर्दे स्वच्छ होकर मूत्र-निर्माण कार्य ठीक रूप में होने लगता है। धातुरोग, अल्पार्तव, अत्यार्तव, कष्टार्तव इत्यादि दूर होते हैं।

६. शलभासन

संस्कृत में शलभ टिड्डी को कहते हैं। जैसे टिड्डी का पिछला भाग उठा रहता है, वैसे ही नाभि का पिछला भाग ऊपर उठाने से इसे शलभासन कहते हैं।

विधि

१. आसन पर औंधे-पेट के बल लेट जाइए। ठोड़ी भूमि पर टिकी रहेगी। दोनों हाथ क्रमर के साथ

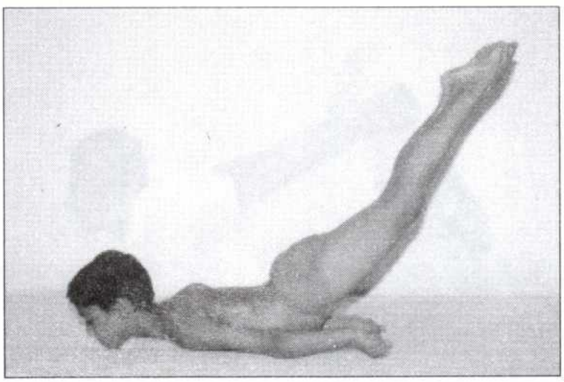

www.thearyasamaj.org

पीछे सीधे रखकर हथेलियाँ ऊपर की ओर करके मुट्ठी बन्द रखनी चाहिए। पैर लम्बे, तलवे ऊपर की ओर मिले रहेंगे।

२. पूरा श्वास भरकर ठोड़ी, हाथों एवं छाती पर शरीर का भार सँभालते हुए नाभि से पिछला भाग धीरे-धीरे ऊपर उठाइए। पैर मिले हुए और पंजे तथा घुटने सीधे रहेंगे। पेडू प्रदेश तक ही शरीर को ऊपर उठाना चाहिए।

३. जब श्वास टूटने लगे तो धीरे-धीरे आसन को छोड़ना चहिए। कुछ समय तक श्वास-प्रश्वास सामान्य होने पर पुनः श्वास भरकर दूसरा चक्र करना चाहिए। इस प्रकार ३ से ७ चक्र तक अभ्यास कर सकते हैं।

लाभ : यह आसन उदर के विकारों, गैस बनना, अजीर्ण, तिल्ली, यकृत् अग्न्याशय और कटि-पीड़ा तथा स्त्री-रोगों में लाभ करता है।

७. धनुरासन

विधि

१. पहले आसनों की भाँति औंधे लेटिए। अपने पैरों को घुटनों से मोड़िए। एड़ियाँ नितम्बों से मिल जाएँ। दोनों घुटने मिले हुए रहने चाहिएँ। अब दोनों हाथों से पैरों के टखने पकड़िए।

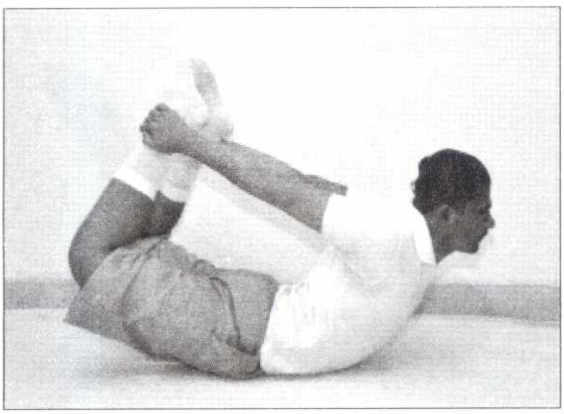

२. श्वास भरकर धीरे-धीरे पैरों को पीछे की ओर तानकर और जंघाएँ ऊपर उठाने का प्रयास कीजिए, परन्तु हाथ सीधे खिंचे रहने चाहिएँ।

३. पिछले भाग को यथेष्ट ऊपर उठाने के पश्चात् ऊपर का भाग पेट, छाती, ग्रीवा और सिर भी ऊपर उठाइए। इस समय केवल नाभि तथा पेडू के आसपास का भाग ही भूमि से लगा रहेगा। समस्त शरीर का भार इसी प्रदेश पर रहेगा। इस समय शरीर की आकृति डोरी चढ़ाकर आकर्षित किये हुए धनुष के समान हो जाएगी।

४. श्वास को छोड़ते हुए पहली स्थिति में आ जाइए। श्वास-प्रश्वास सामान्य होने पर पुनः दूसरा चक्र आरम्भ कीजिए। यदि अधिक समय रहना है तो एक बार श्वास भरकर प्रारम्भ करें और फिर सामान्य श्वास चलता रहेगा।

नोट - प्रारम्भ में घुटनों को मिलाना कठिन कार्य है, अतः घुटने चौड़े रखकर ही अभ्यास किया जाना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए घुटनों के पास लाने का प्रयत्न करना उचित है।

इस आसन में छाती एवं घुटने समान ऊँचाई पर उठाने चाहिएँ। पहले अगला भाग ऊपर उठाने से पिछला भाग अधिक नहीं उठता, अतः पहले पिछला भाग घुटने आदि ऊपर उठाने आवश्यक हैं।

लाभ - यह आसन शलभासन और भुजंगासन का मिला हुआ रूप है, अतः इससे होने वाले लाभ भी पहले दोनों आसनों जैसे ही हैं, परन्तु कुछ कम मात्रा में। इस आसन में दबाव पेट की सामनेवाली दोनों बड़ी पेशियों एवं उनकी सहायक पेशियों पर पड़ता है जिससे वे सबल, स्वस्थ और लचीली बनती हैं। नाभि टलना दूर होता है। स्त्रियों में मासिक धर्म-सम्बन्धी विकारों में लाभदायक है। मेरुदण्ड के कशेरू खिंचकर कद की वृद्धि होती है।

जिन व्यक्तियों को भयभीत होने पर मूत्र निकल जाता है उनका यह रोग धनुरासन के अभ्यास से बहुत

www.thearyasamaj.org

शीघ्र चला जाता है, क्योंकि सूर्य-चक्र में रक्ताधिक्य न रहने तथा अग्न्याशय के ठीक कार्य करने से इस रोग के लक्षण समाप्त हो जाते हैं।

८. पश्चिमतान आसन

विधि

१. लम्बी बैठी स्थिति लीजिए। पैर सीधे और घुटने, एड़ी, पंजे मिले हुए रहें। कमर सीधी, दृष्टि सामने रखकर दोनों हाथ कमर से मिलाकर हथेलियाँ भूमि पर टिकाइए। इसे दण्डासन भी कहते हैं। बैठकर किये जानेवाले सभी आसन इसी स्थिति से प्रारम्भ किये जाते हैं।

२. दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से दाहिनी से दाहिना और बायीं से बाएँ पैर का अंगूठा पकड़िए। यदि अंगूठे पकड़े नहीं जा सकें तो प्रारम्भ में घुटने या टखनों को पकड़कर ही अभ्यास करना चाहिए।

३. श्वास बाहर निकालकर पेट को भीतर की ओर संकुचित कर या उड्डीयान बन्ध लगाते हुए धीरे-धीरे कटित्रिक प्रदेश के पृष्ठवंश को आगे की ओर झुकाते हुए सिर को घुटने के मध्य में लगाने का प्रयास कीजिए। हाथों की कुहनियाँ भूमि पर टिकी हुई और घुटने, पिण्डली, जंघा सभी सीधे और भूमि से लगे हुए रहेंगे।

४. कुछ समय तीसरी स्थिति में रहकर धीरे-धीरे वापस आइए। श्वास-प्रश्वास सामान्य होने पर फिर घुटनों में सिर लगाने का प्रयत्न कीजिए। इस प्रकार तीन चक्र करने चाहिएँ।

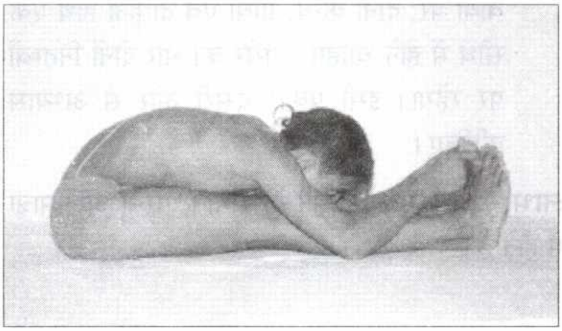

लाभ - पश्चिमतान में पृष्ठवंश की सभी मांसपेशियाँ विस्तृत होती हैं और उदर की पेशियाँ संकुचित होकर उनका स्वास्थ्य सुधरता है। कटित्रिक प्रदेश की नाड़ियों को भरपूर रक्त मिलने से उनकी तान बनी रहती है।

हठयोग के अभ्यासी इसका अभ्यास घण्टों करते हैं। हठप्रदीपिका के अनुसार यह आसन प्राणों को सुषुम्णा की ओर उन्मुख कर देता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है।

इस आसन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वीर्य-सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। पेट की चर्बी घट जाती है।

सावधानी - जिनको स्थायी कब्ज रहता है उन्हें २-३ मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए। यदि अधिक समय तक किया जाए तो मध्य में कई बार उड्डीयान बन्ध का लगाया जाना आवश्यक है।

९. अर्ध मत्स्येन्द्रासन

योगी मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा आविष्कृत होने से इसे मत्स्येन्द्रासन कहते है। पूर्ण मत्स्येन्द्रासन बहुत श्रमसाध्य है, अतः अर्ध मत्स्येन्द्रासन, जो कि करने में सरल और

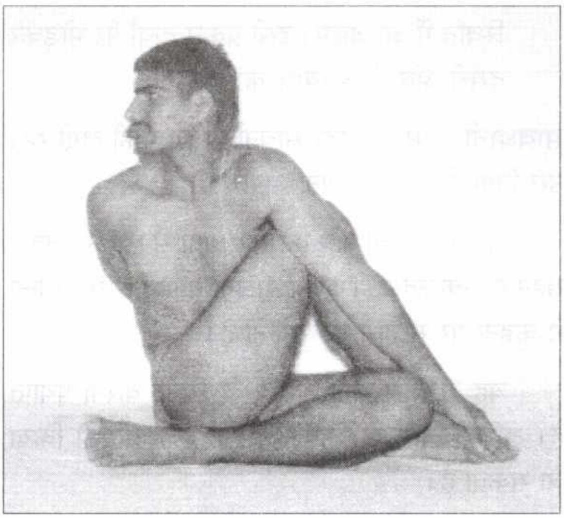

www.thearyasamaj.org

चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, की विधि नीचे दी जाती है।

विधि

१. बैठी लम्बी स्थिति लीजिए।

२. बायाँ पैर मोड़कर उसकी एड़ी सीवनी (मल-मूत्रेन्द्रिय के मध्य का स्थान) पर लगाएँ। पैर का तलवा दायीं जाँघ से लगाकर घुटना भूमि पर टिका हुआ रहेगा।

३. दाएँ पैर को मोड़कर बायें घुटने के बाहर की ओर रखिए। दायाँ घुटना ऊपर उठा रहना चाहिए।

४. बाएँ हाथ का कन्धा बाएँ पैर के बाहर से लाकर दाएँ पैर का अंगूठा पकड़िए।

५. दाएँ हाथ को कटिप्रदेश के पीछे ले-जाकर बायीं जंघा मूल में स्थिर कीजिए। कटि सीधी रखकर उसे दाई ओर मोड़िए। इसी प्रकार ग्रीवा को भी दाई ओर मोड़िए, यहाँ तक कि ग्रीवा दायें कन्धे की सीध में आ जाए।

६. एक मिनट (प्रारम्भ में १५ सैकिण्ड) तक इस स्थिति में रहने के पश्चात् क्रमशः ग्रीवा, बायाँ हाथ, दायाँ पैर, दायाँ हाथ वापस लाकर लम्बी बैठी स्थिति में आ जाइए। इसी प्रकार दायाँ पैर मोड़कर दूसरी ओर से अभ्यास कीजिए।

सावधानी - पैर की एड़ी सीवनी-प्रदेश में ही लगी रहे। उसे नितम्बों के नीचे लाना अनुचित है।

घुटनों के आगे हाथ को सावधानी से लाकर जितना सहन हो सके उतना ही दबाव डालना चाहिए। असावधानी में कुहनी पर से हाथ टूट सकता हे।

यह अभ्यास दोनों ओर १-१ मिनट करना पर्याप्त है। अधिक लाभ के लिए ३ मिनट एक ओर से किया जा सकता है।

लाभ - उदर की मांसपेशियाँ खिंचकर आँतों को बल मिलता है। मधुमेह में लाभकारी है।

१०. वक्रासन

इसका यौगिक पुस्तकों में वर्णन नहीं है। जिन्हें अर्ध मत्स्येन्द्रासन करने में कठिनाई हो वे इसका अभ्यास कर सकते हैं।

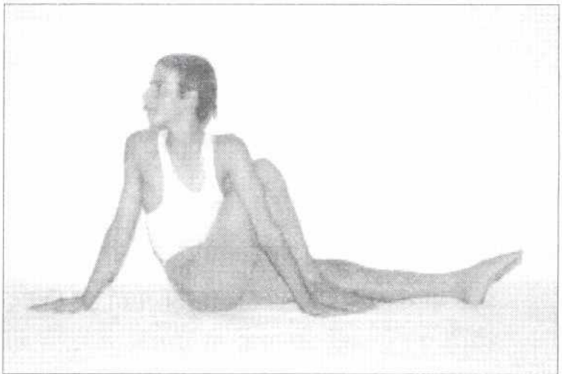

विधि

१. लम्बी स्थिति में बैठिए।

२. दाहिना पैर मोड़कर बाएँ पैर के घुटने के पास स्थित करें। बाँया पैर सीधा रहेगा।

२. बायाँ हाथ दाहिने घुटने के बाहर से लाकर हथेली नीचे भूमि पर टिकाइए।

४. दाहिना हाथ कमर के पीछे सीधा भूमि पर टिकाकर ग्रीवा को दाहिनी ओर मोड़िए। अन्तिम स्थिति में बायाँ पैर, दोनों कन्धे, ग्रीवा एवं दाहिना हाथ एक सीध में होने चाहिए। शरीर का भार दोनों नितम्बों पर रहेगा। इसी प्रकार दूसरी ओर से अभ्यास कीजिए।

लाभ - अर्ध-मत्स्येन्द्रासन के समान, परन्तु अल्पमात्रा में होते हैं।

www.thearyasamaj.org

११. वज्रासन

विधि

१. लम्बी बैठी स्थिति में बैठिए।

२. बायें हाथ से बायें पैर को मोड़कर बायें नितम्ब के पास रखिए। एड़ी बाहर की ओर निकली हुई तथा पंजा नितम्ब से लगा रहेगा। पैर का तलवा ऊपर की ओर रहना चाहिए।

३. इसी प्रकार दाहिने पैर को मोड़िए। इस अवस्था में दोनों पैरों की एड़ियाँ बाहर की ओर निकली हुई तथा नितम्ब भूमि पर टिके हुए रहेंगे।

४. घुटने को मिलाकर उन पर हाथ सीधे रखिए। शरीर सीधा, दृष्टि सामने और श्वास-प्रश्वाससामान्य चलता रहेगा।

कुछ व्यक्तियों के घुटने प्रारम्भ में इतने नहीं मुड़ते कि नितम्ब भूमि पर टिक सकें। वे दोनों पैरों के पंजे परस्पर मिलाकर उन पर कूल्हे रखकर बैठें। एड़ियाँ भी कूल्हों के नीचे लगी रहेंगी।

लाभ - यह आसन ध्यानात्मक आसन है। भोजन के पश्चात् १५ मिनट तक बैठने से पाचन-कार्य सुगमता से होता है। घुटनों की पीड़ा दूर होती है। उड्डीयान बन्ध, प्राणायाम तथा अश्विनीमुद्रा सरलता से किये जा सकते हैं।

१२. सुप्तवज्रासन

वज्रासन से ही पीठ के बल लेट जाने से इसे सुप्त वज्रासन कहते हैं।

विधि

१. वज्रासन की स्थिति में बैठिए।

२. दोनों हाथों को पार्श्वभाग में रखकर उनकी सहायता से धीरे-धीरे शरीर को पीछे मोड़ते हुए सिर को भूमि पर टिका दीजिए। कुहनियाँ भूमि पर टिकी हुई तथा कमर और छाती ऊपर उठी रहेगी। दोनों घुटने मिले हुए रहने चाहिएँ।

३. धीरे-धीरे सिर, ग्रीवा, कन्धे, पीठ सभी को भूमि पर टिकाने का प्रयत्न कीजिए।

४. दोनों हाथ बाँधकर सिर के पीछे स्थिर करें अथवा दोनों हाथों को सीधे करके पीछे भूमि पर टिकाएँ। प्रारम्भ में यदि घुटने भूमि पर टिकाने में या उन्हें मिलाने में कुछ कठिनाई हो तो हाथों से टखनों को सहारा दिया जा सकता हे।

५. आसन छोड़ने के लिए कुहनियों और हाथों का सहारा लेकर धीरे से उठकर वज्रासन की स्थिति में बैठ जाइए।

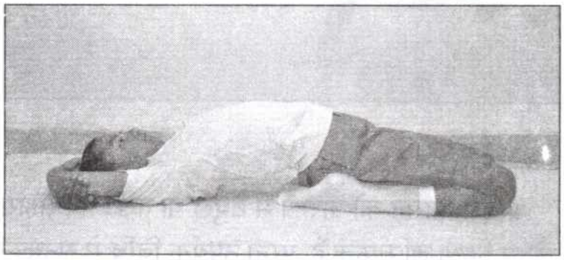

यह आसन २-३ मिनट तक करना पर्याप्त है। शीघ्रता से करने पर घुटनों के जोड़ उखड़ने का डर है।

लाभ - इस आसन से पेट के नले खिंचते है। नाभि टलना दूर होता है। बड़ी आँतें सक्रिय होकर कोष्ठबद्धता मिटती है। जिन्हें दिनभर आगे झुककर काम करना पड़ता है, उनकी कटि में होने वाली पीड़ा को दूर करता है। पेडू प्रदेश पर इसका अच्छा प्रभाव होता है।

१२. मयूरासन

मोर के समान आकृति बनने से इस आसन को मयूरासन कहते हैं।

www.thearyasamaj.org

कुहनियाँ नाभि के पास या कुछ नीचे रखिए।

२. सारे शरीर का भार कुहनियों पर टिकाते हुए पहले बायाँ और फिर दाहिना पैर पीछे सीधा कीजिए। इस समय केवल नाभि के आसपास का भाग उठा हुआ रहेगा। पैर पीछे भूमि पर टिके हुए रहने चाहिएँ।

३. शरीर का सन्तुलन करने के लिए कुछ आगे की ओर झुकिए। पूरा सन्तुलन बनाने के पश्चात् पैरों को ऊपर उठाइए। इसके पश्चात् सिर को भी ऊपर उठाइए। अन्तिम स्थिति में पैर और सिर भूमि के समानान्तर हो जाएँगे।

४. यथाशक्ति आसन में रहने के पश्चात् इसे छोड़िए। पहले घुटने भूमि पर टिकाकर फिर कुहनियाँ

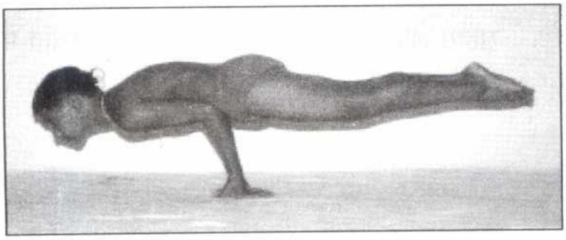

हटाइए।

इस आसन को प्रारम्भ में टेबुल या तख्त का सहारा लेकर किया जा सकता है, परन्तु उपर्युक्त विधि से सन्तुलन शीघ्र होगा। इसका समय २० सैकिण्ड से ३ मिनट तक पर्याप्त है।

लाभ - शुद्ध रक्त को नीचे के अंगों में ले-जानेवाली धमनी जहाँ दो भागों में विभक्त होती है, वहाँ दबाव पड़ने से आंशिक रूप से बन्ध लग जाता है। इसके फलस्वरूप पाचन-तन्त्र को अधिक मात्रा में रक्त मिलता है। उदर में आन्तरिक दबाव अधिक बढ़ जाने से समस्त पाचनतन्त्र, तिल्ली, यकृत्, गुर्दे, अग्न्याशय और आमाशय लाभान्वित होते हैं। यह आसन अग्निवर्धक और मधुमेह में हितकर है। यह आसन लड़कियों के लिये मना है।

१३. चक्रासन

विधि

१. सावधान की स्थिति में सीधे खड़े हो जाइए। हाथ शरीर से मिले हुए और पैरों के पंजे तथा एड़ियाँ भी मिले हुए। प्रारम्भ में पैरों में २-३ फुट का अन्त भी रक्खा जा सकता है। इसे त्रिकोणासन कहते हैं।

२. बायें हाथ को पार्श्वभाग से धीरे-धीरे ऊपर उठाइए। कन्धे के सीध में आने के पश्चात् हथेली ऊपर की ओर हो जाएगी। हाथ को ऊपर उठाकर सीधा कीजिए। बायीं भुजा बायें कान से मिलाकर बायाँ कन्धा जितना हो सके उतना ऊपर कीजए। दाहिना हाथ नीचे की ओर कमर से मिला हुआ रहेगा।

३. बायें हाथ को बिना मोड़े दाहिनी ओर झुकिए।

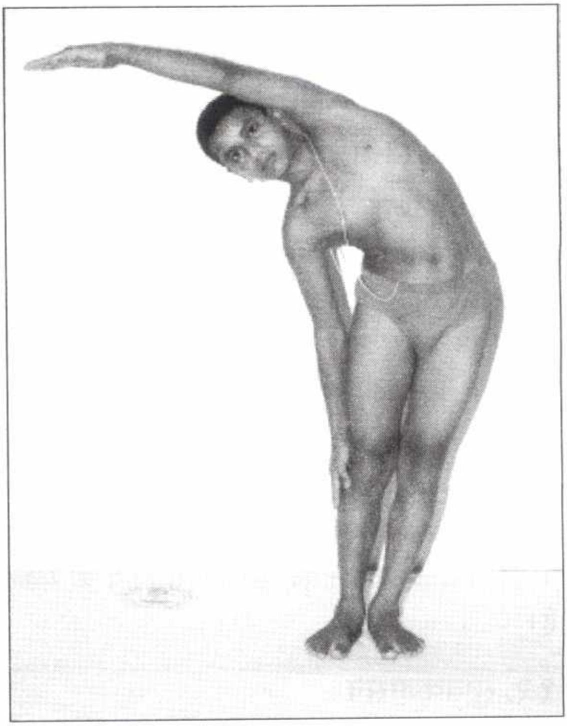

दाहिना हाथ दाहिने पैर के घुटने तक आ जाएगा। झुकते समय झुकाव आगे या पीछे न होकर दाहिनी ओर रहेगा, दोनों पैरों पर समान भार रहना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

४. इस अवस्था में कुछ समय रहने के पश्चात् जैसे आये थे वैसे ही धीरे-धीरे वापस सावधान की स्थिति में आ जाइए। इसी प्रकार दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर बायीं ओर झुकिए। यह एक चक्र पूरा हुआ। ऐसे ३ से ७ चक्र पूरे कीजिए।

लाभ - इस आसन में मेरुदण्ड दाहिने और बायें मुड़ता है, अत: कटि-प्रदेश लचकीला बनता है। पार्श्वभागों में जो चर्बी जमा हो जाती है वह धीरे-धीरे दूर होती है। पृष्ठवंश की मांसपेशियाँ खिंचती हैं।

१४. योगमुद्रा

इसे अन्य आसनों के पश्चात् करना चाहिए।

विधि

१. पद्मासन की भाँति दाहिने पैर को बायीं जंघा पर रखिए। एड़ी पेट से लगनी चाहिए। इसी प्रकार बाएँ पैर को रखिए। दाहिनी एड़ी से मलाशय और बायीं एड़ी से अन्धान्त्र को दबाएँ।

२. दोनों हाथों को पीछे ले-जाकर बायें हाथ में दाहिना हाथ पकड़िए। दाहिने हाथ की मुट्ठी बन्द रहेगी।

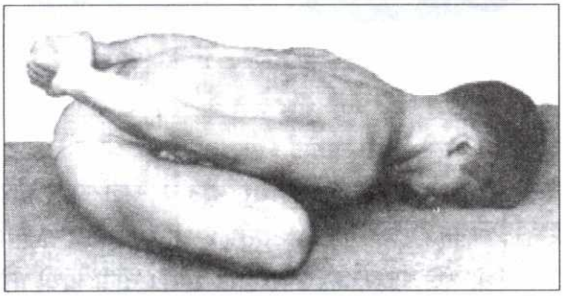

३. कटित्रिकप्रदेश से सीधा सामने झुकते हुए धीरे-धीरे मुख को या सिर के अगले भाग को भूमि पर टिका दें। जितना सीधा होकर भूमि स्पर्श किया जाए उतना ही अच्छा है।

४. इस स्थिति में १०-१५ सैकिण्ड रहने के पश्चात् धीरे-धीरे ऊपर उठते हुए सीधे बैठ जाइए। कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् पुन: द्वितीय चक्र प्रारम्भ करें। इस प्रकार ३ से ७ चक्र किये जा सकते हैं।

पूर्ण अभ्यास होने पर इसे २-३ मिनट तक किया जा सकता है। आध्यात्मिक लाभ के लिए इसे अधिक समय तक करना चाहिए।

उदरस्थ आशयों की प्राय: नीचे लटकने की प्रवृत्ति है। उन्हें पुन: अपने स्थान पर व्यवस्थित करने के लिए इनमें कुछ परिवर्तन किया जाता है। अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द करके उन्हें एड़ियों पर इस प्रकार रखिए कि हथेलियाँ नीचे की ओर रहकर एड़ियों पर गेंद जैसी बन जाएँ। पहले के समान ही आगे झुकिए। ४-५ सैकिण्ड आगे झुके रहने के पश्चात् ऊपर उठिए। ऐसे ५-७ बार अभ्यास करें।

लाभ - योगमुद्रा से उदर की मांसपेशियाँ सुदृढ़ बनती हैं।

१५. सिद्धासन

विधि

१. लम्बी बैठी स्थिति लीजिए। बैठने का आसन कोमल होना चाहिए। नितम्बों के नीचे दो अंगुल मोटी कपड़े की परत बनाकर रख ली जाए तो इस आसन के करने में सुविधा रहेगी।

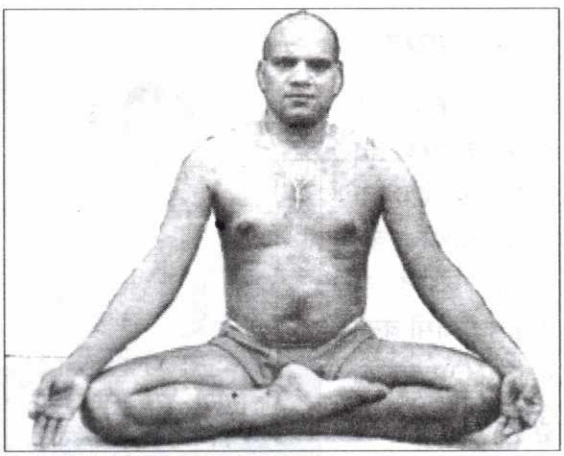

www.thearyasamaj.org

२. बायाँ पैर मोड़कर उसकी एड़ी सीवनी (गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय) के मध्य के कोमल स्थान में लगाएँ। दाहिने पैर की एड़ी जननेन्द्रिय के ऊपरवाले भाग में स्थित करें। इस स्थिति में बाएँ पैर के टखने पर दाहिने पैर का टखना रहेगा। दाहिने पैर का पंजा बाएँ पैर की जंघा और पिण्डली के मध्य में रहना चाहिए। ऐसे ही बाएँ पैर को दाहिने पैर की जंघा और पिण्डली के मध्य स्थिति करें। दोनों पैरो के घुटने भूमि पर टिके हुए रहेंगे। गुप्तांग बायीं ओर रहने चाहिएँ। इन पर अनावश्यक दबाव न पड़े। लंगोट बाँधे रहने पर यह समस्या नहीं रहती।

३. दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा (तर्जनी अंगुली, अंगूठे से मिली हुई, शेष तीनों अंगुलियाँ सीधी) बनाकर घुटनों पर सीधी स्थिर करे। शरीर न ढीला एवं न ही अकड़ा हुआ होकर स्वाभाविक रूप में सीधा रहना चाहिए।

४. ठुड्डी कण्ठकूप में लगाकर जालन्धरबन्ध लगाइए। आँखें खुली हुई और दृष्टि दोनों भ्रुवों के मध्य में स्थिर रहनी चाहिए।

हठयोग में इस आसन को प्रमुखता दी गई है। चौरासी आसनों में सदैव सिद्धासन का अभ्यास करना उचित है। सिद्धों द्वारा गृहीत होने से इसे सिद्धासन कहा गया है। इस आसन में तीनों बन्ध अनायास ही लग जाते हैं। इससे काम का वेग शान्त होता है।

१६. पद्मासन

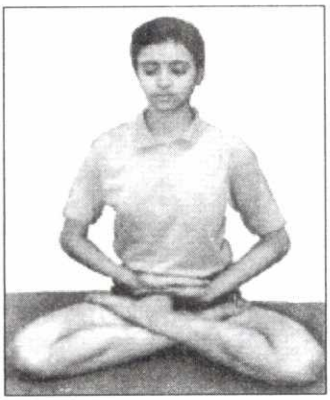

संस्कृत में पद्म कमल का पर्यायवाची है। पैरों तथा हाथों की आकृति कमल की पंखुड़ियों जैसी बनने से इसे पद्मासन कहते हैं।

विधि

१. दाहिने हाथ से दाहिना पैर बायीं जंघा पर रखिए। इसी प्रकार बाएँ पैर को दाहिनी जंघा पर स्थिर कीजिए। घुटने भूमि पर टिके हुए रहने चाहिएँ।

२. दोनों हाथों की अंजलि (बायाँ हाथ नीचे) बनाकर अंक (नाभि के पास एड़ियों पर) में स्थित कीजिए। कुहनियाँ बाहर की ओर निकली हुई रहेंगी।

३. ठोड़ी को छाती पर लगाकर जालन्धर बन्ध तथा नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर कीजिए। इसे पद्मासन कहते हैं।

१७. शवासन

इस आसन में शरीर को ढीला छोड़ा जाता है। जैसे मृतक शरीर में कोई चेष्टा नहीं होती, इसी प्रकार शवासन में समस्त शरीर को निश्चेष्ट करने का प्रयास किया जाता है। संस्कृत भाषा में शव मृतक शरीर को कहते हैं।

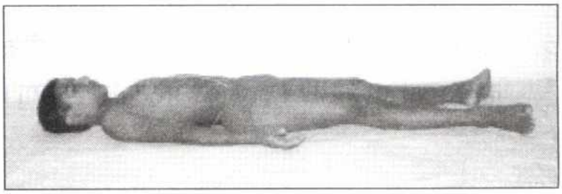

विधि

१. दरी या कम्बल बिछाकर पीठ के बल सीधे लेट जाइए। दोनों पैरों में अन्तर १ या २ फुट तथा पैरों के पंजे बाहर की ओर ढीले रहेंगे। दोनों हाथों को कमर से कुछ अन्तर पर रखकर सीधा करें। हथेलियाँ ऊपर या अन्दर की ओर रहनी चाहिएँ। ग्रीवा भूमि पर सीधी टिकी हुई। आँखें बन्द और सारा शरीर ढीला तथा स्थिर रहना चाहिए। एक बार शरीर की ठीक स्थिति बनाने के पश्चात् पुनः हलचल करना अच्छा नहीं है। इस स्थिति में १०-१२ गहरे श्वास धीरे-धीरे लें।

www.thearyasamaj.org

२. मन से दाहिने पैर के अंगूठे का निरीक्षण करें। इसी प्रकार क्रमशः दाहिने पैर की अंगुलियाँ, एड़ी, टखना, पिंडली, घुटना, जंघा इत्यादि का मन से ही निरीक्षण करके उन्हें संकल्प द्वारा ही ढीला कीजिए। इसके पश्चात् बाएँ पैर को इसी पद्धति से शिथिल करें। इसी प्रकार दाहिना हाथ, बायाँ हाथ, पेट, छाती, ग्रीवा, मुख सभी को ढीला छोड़िए। इस सारी प्रक्रिया में श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान न होकर केवल मन द्वारा ही सभी अंगों का सूक्ष्म निरीक्षण और उनका शिथिलीकरण होना चाहिए। मन में और कोई विचार नहीं आए।

३. अब ध्यान को पेट पर केन्द्रित कीजिए। पेट के ऊपर जाने और नीचे आने को मन से देखिए। श्वास लेते समय पेट ऊपर उठता है और छोड़ते समय नीचे जाता है। इस क्रिया का मन द्वारा निरीक्षण करते रहिए। निरीक्षण के समय उसे रोकने का प्रयास मत कीजिएं इस प्रक्रिया को दो मिनट चलते रहने दीजिए।

४. इसके पश्चात् ध्यान को श्वास एवं प्रश्वास पर ले-जाइए। श्वास बाहर फेफड़ों में आ रहा है और फेफड़ों से बाहर जा रहा है। इस क्रिया का मन द्वारा निरीक्षण कीजए। अन्य कोई विचार नहीं आना चाहिए। इसे भी दो मिनट तक कीजिए।

५. अब ध्यान को नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित कीजिए। श्वास लेते समय शीतल और छोड़ते समय उष्णवायु की अनुभूति हो रही है इसको निरीक्षण करने का यत्न कीजिए। इस अवधि में श्वास-प्रश्वास सामान्य और शब्द रहित चलता रहेगा। नव अभ्यासी के लिए पहली पाँच स्थितियाँ ही पर्याप्त हैं। इन्हीं का अभ्यास कई मास तक करना चाहिए।

लाभ -

१. शरीर-रचना की दृष्टि से विश्राम के लिए शवासन सर्वाधिक अनुकूल स्थिति है। इसमें शरीर के किसी भी तन्त्र को गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध कार्य नहीं करना पड़ता। मांसपेशियाँ शिथिल होकर उनकी थकान मिट जाती है तथा वे पहले से अधिक सक्रिय और स्फूर्तियुक्त बन जाती हैं।

२. सिरागत अशुद्धरक्त सरलता से हृदय की ओर प्रवाहित होने लगता है। इसे आकर्षित करने की आवश्यकता न होने से हृदय को विश्राम मिलता है जिसके फलस्वरूप रक्तचाप कम हो जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम के भेद

पूरक, रेचक और कुम्भक - ये प्राणायाम के तीन भेद हैं। बाहर से श्वास को भीतर लेना पूरक, भीतर से बाहर निकालना रेचक और उनका रोकना कुम्भक कहलाता है। वस्तुतः कुम्भक ही प्राणायाम है। प्रस्तुत प्रकरण में प्रथम योगदर्शन के अनुसार और पुनः हठयोग के ग्रन्थों के आधार पर प्राणायाम का वर्णन किया जाएगा।

योगदर्शन में कुम्भक के चार भेद किये हैं। १. बाह्य, २. आभ्यन्तर, ३. स्तम्भवृत्ति और ४. विषयाक्षेपी या चतुर्थ।

१. बाह्य कुम्भक

'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' (योगदर्शन)।

विधि

१. ध्यानात्मक आसन में बैठकर श्वास को एक बार में ही यथाशक्ति बाहर निकालिए।

२. बाहर निकालकर मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध लगा अपनी सामर्थ्य के अनुसार बाहर ही रोकिए।

३. जब श्वास अधिक समय तक न रुक सके तो बन्धों को छोड़ते हुए धीरे-धीरे श्वास को भीतर लीजिए। यह एक चक्र पूरा हुआ।

www.thearyasamaj.org

४. भीतर लेने के पश्चात् उसे बिना रोके ही पुनः बाहर फेंककर बाहर ही रोकिए। इस प्रकार ३ से २१ चक्र किए जा सकते हैं। अभ्यास होने पर मूलबन्ध को निरन्तर लगाये रहें।

सावधानी - श्वास को बाहर इतना न रोकें कि भीतर लेते समय झटके से श्वास भीतर जाए और उखड़े हुए श्वास को कई सामान्य श्वास लेकर ठीक करना पड़े।

लाभ - यह हानिरहित प्राणायाम है। इससे मन की चंचलता दूर होकर वृत्तिनिरोध होता है। बुद्धि सूक्ष्म और तीव्र होती है। मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध से वीर्य स्थिर होकर स्वप्नदोष और शीघ्र-पतन से छुटकारा मिलता है।

२. आभ्यन्तर कुम्भक

विधि

१. श्वास को प्रथम बाहर निकालकर पुनः पूरा भीतर लीजिए। छाती का पूरा विकास कीजिए और पेट को कुछ भीतर सिकोड़िए।

२. पूरा श्वास भर लेने के पश्चात् जालन्धरबन्ध लगाइए। मूलबन्ध भी लगाया जा सकता है। श्वास को यथाशक्ति भीतर रोकिए।

३. जालन्धरबन्ध हटाकर धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिए। यह एक चक्र पूरा हुआ। इसी प्रकार यथेष्ट अभ्यास कीजिए।

३. नाड़ी शुद्धि प्राणायाम

१. चन्द्रस्वर से पूरक ८ गिनते हुए कीजिए।

२. पूरक के पश्चात् जालन्धरबन्ध लगाइए। दोनों स्वरों को अंगूठे और कनिष्ठा तथा अनामिका से बन्द कर लीजिए। नासिका द्वारों को प्रारम्भ में ही बन्द करना चाहिए। पश्चात् इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। ३२ संख्या गिनने तक कुम्भक (श्वास को भीतर रोकना) कीजिए।

३. सूर्यस्वर से १६ गिनते हुए श्वास छोड़िए। यहाँ आधा चक्र पूरा हुआ।

४. इसी प्रकार सूर्यस्वर से अभ्यास करें। यह एक चक्र पूरा हुआ।

लाभ - इस प्राणायाम से ७२००० नाड़ियों की शुद्धि होती है। तीन मास तक प्रातः, मध्यन्दिन, सायं और अर्धरात्रि में अभ्यास करने से शरीर में लघुता, जठराग्नि-प्रदीप्ति, मुख पर कान्ति और दिव्यनाद श्रवण इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं।

४. सूर्यभेदन

विधि-

१. दाहिने स्वर से ८ गिनते हुए श्वास को भीतर लीजिए।

२. जालन्धरबन्ध लगाकर ३२ तक कुम्भक कीजिए।

३. बाएँ स्वर से १६ गिनते हुए रेचक कीजिए। यह एक चक्र पूरा हुआ। ऐसे ३ चक्र पूरे कीजिए।

लाभ - इस प्राणायाम से जठराग्नि की वृद्धि होती है। कफ एवं वात के रोग, प्रतिश्याय, गले के विकार और उदर के कृमि दूर होते हैं।

५. शीतली

विधि -

१. जिह्वा को बाहर निकालकर उसे दोनों ओर से मोड़कर कव्वे की चंचु जैसी बनाइए। ओष्ठों की आकृति अंग्रेजी के अक्षर O जैसी बनाने से जिह्वा के दोनों किनारे मुड़कर नलीयुक्त बन जाते हैं। प्रारम्भ में यह अभ्यास दर्पण में देखकर किया जा सकता है।

२. इसी चंचु-जैसी बनी जीभ से वायु को भीतर खींचिए।

३. कुम्भक करके नासिका मार्ग से प्रश्वास छोड़िए।

www.thearyasamaj.org

लाभ – सीत्कारी और शीतली दोनों ही प्राणायाम शरीर को शीतलता पहुँचाते हैं। चर्मरोग एवं पित्त के विकार शान्त होते हैं। स्वरतन्तु स्वस्थ होकर वाणी सुरीली बनती है। ग्रीष्म ऋतु में प्यास लगने पर जल के अभाव में शीतली से तृषा को शान्त किया जा सकता है। जिन्हें सूर्यभेदन या अन्य प्राणायाम के पश्चात् उष्णता या खुश्की प्रतीत हो वे शीतली का अभ्यास करें। कफ प्रवृत्ति और शीत ऋतु में इसका अभ्यास वर्जित है।

६. भस्त्रिका

लोहार की धौंकनी के समान श्वास-प्रश्वास की क्रिया होने से इसे भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं।

विधि

१. पद्मासन में सीधे बैठिए। इस प्राणायाम में पद्मासन ही उपयुक्त रहता है। हाथ घुटनों पर टिकाकर स्थिर कीजिए।

२. बलपूर्वक श्वास को भीतर लीजिए और उस प्रकार बाहर निकालिए। श्वास की क्रिया में छाती, कन्धे, पसलियाँ विकसित तथा संकुचित होते हैं। श्वास निकालते समय आगे की ओर झुकना मना है। मुख की आकृति भी नहीं बिगाड़नी चाहिए।

३. इसी प्रकार १० से २० धक्के बाहर और भीतर लगाइए। इसमें रेचक और पूरक दोनों सक्रिय रहने चाहिएँ।

४. अन्तिम धक्के के पश्चात् दाहिने सवर से पूरक करके कुम्भक करें। कुम्भक के पश्चात् बाएँ स्वर से रेचक द्वारा श्वास को निकाल दें। यह १ चक्र पूरा हुआ। ऐसे ३ चक्र करने उचित हैं।

लाभ – यह त्रिदोषनाशक और जठराग्निवर्धक है। इससे नज़ला, जुकाम, गले तथा अन्य कफरोगों की निवृत्ति होती है। सुषुम्णा नाड़ी के मुख पर स्थित कफार्गल को हटाकर कुण्डलिनी जागरण करता है।

२०-३० बार भस्त्रिका करने के अनन्तर पूरक करके दोनों हाथों की अंगुलियों से आँख, नाक, मुख तथा अंगूठों से कान दबाकर कुम्भक कीजिए। श्वास छोड़कर पुनः इसी प्रकार २ चक्र का अभ्यास करें। इसे षण्मुखी कुम्भक कहते हैं। इस प्राणायाम से अनाहत नाद का श्रवण और ज्योति का आविर्भाव (प्रकाश दिखलाई देना) होगा। मन शान्त होता है।

७. भ्रामरी

विधि –

१. श्वास भीतर लेते समय कण्ठकूप के समीप वाले प्रदेश से भ्रमर के समान शब्द करते हुए पूरक करें।

२. अल्पकाल के कुम्भक के पश्चात् या बिना कुम्भक किये ही श्वास को भ्रमरी के जैसा ऊं-ऊं-ऊं का स्वर गुंजाते हुए धीरे-धीरे छोड़िए। इस सारी प्रक्रिया में मुख को बन्द करके नासिका से स्वर निकलेगा।

लाभ – अत्यन्त चंचल मन भी शान्त हो जाता है। स्वर यन्त्र ठीक होता है।

बन्ध

१. जालन्धरबन्ध

विधि –

१. सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जाइए। दोनों हाथ घुटनों पर रहेंगे।

२. श्वास को भीतर पूरा भर लीजिए। पेट पीछे की ओर तथा छाती आगे उठी हुई रहनी चाहिए।

३. ठोड़ी को कण्ठकूप में स्थिर कीजिए। ठोड़ी से कण्ठकूप और छाती को दबाइए। दृष्टि भ्रूमध्य में स्थिर कीजिए।

४. श्वास को यथाशक्ति भीतर रोकने के पश्चात् जालन्धरबन्ध को खोलिए। ग्रीवा सीधी करके श्वास

www.thearyasamaj.org

बाहर निकाल दीजिए। आभ्यन्तर कुम्भक में इस बन्ध को लगाइए।

२. उड्डीयानबन्ध

प्राण उड़कर (उत्थान होकर) सुषुम्णा में प्रविष्ट होने से इसे उड्डीयानबन्ध कहते हैं।

विधि -

१. खड़े होकर पैरों का अन्तर एक से डेढ़ फुट रखिए।

२. आगे झुककर हाथ दोनों घुटनों पर रखिए, परन्तु हाथों से घुटनों को दबाना नहीं चाहिए। घुटने भी कुछ आगे की ओर झुके हुए हों।

३. घुटने और कमर आगे की ओर झुकाते हुए पूरा श्वास बाहर निकाल दीजिए।

४. अब पेट को ढीला छोड़कर उसे पीछे तथा पसलियों की ओर आकृष्ट कीजिए। जालन्धर बन्ध लगाकर छाती को कृत्रिम श्वास लेने का प्रयत्न करते हुए फुलाइए। इससे ऋणात्मक दबाव उत्पन्न होने से बाह्य दबाव के कारण पेट और भीतर की ओर जाएगा।

५. यथाशक्ति श्वास को बाहर रोकने के पश्चात् धीरे-धीरे लीजिए और उड्डीयानबन्ध को छोड़ दीजिए।

६. खड़े होकर ४-५ सामान्य श्वास लेकर पुनः इसी प्रक्रिया को दोहराएँ। प्रारम्भ में तीन चक्रों का अभ्यास पर्याप्त है।

इसी प्रकार उड्डीयानबन्ध को सिद्धासन, पद्मासन या शीर्षासन में घुटने मोड़कर और उत्कटासन में बैठकर करने का भी प्रयत्न कीजिए।

सावधानी - इस बन्ध के अभ्यास से हृदय पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। अतः हृदय-रोगी या दुर्बल हृदयवालों को इसका अभ्यास निषिद्ध है। स्वस्थ व्यक्तियों को भी अधिक नहीं करना चाहिए।

३. मूलबन्ध

मेरुदण्ड और इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा नाड़ियों के अन्तिम भाग - मूल का आकुञ्चन करने से इसे मूलबन्ध कहते हैं।

विधि

१. सिद्धासन में बैठ जाइए। हाथ घुटनों पर रखने चाहिएँ।

२. श्वास को बाहर निकालकर गुदाप्रदेश एवं मूत्रेन्द्रिय को ऊपर आकर्षित कीजिए। नाभि के नीचे का भाग भी खिंचा रहना चाहिए।

यह बन्ध बाह्य कुम्भक के समय मुख्यतः लगाया जाता है। वैसे आभ्यन्तर कुम्भक में भी लगा सकते हैं। प्राणायाम करते समय इसे सतत् लगाये रहना चाहिए।

साधक ध्यानावस्था और बाद में भी इसे लगाये रहते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य

सजीव शरीर की सभी क्रियाओं का संचालन मन करता हे। कहा भी है

'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'

मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

जो मन को जीत लेता है वही संसार को अपने वश में कर सकता है। हमारे स्थूल शरीर की भी अनेक क्रियाएँ मन से प्रभावित होती हैं।

मन के विकार

मन की रचना प्रकृति के सत्त्वगुण-प्रधान तत्त्व से हुई हैं जब मन में सत्त्वगुण का प्राधान्य रहता है तो वह स्वाभाविक अवस्था में होता है।

सात्त्विक मन के लक्षण - दयालुता, परस्पर बाँटकर वस्तुओं का उपभोग करना, सहनशीलता, सत्यभाषण,

www.thearyasamaj.org

धर्म का आचरण, आस्तिक भाव, ज्ञान-बुद्धि-मेधा से सम्पन्न, धैर्य, स्मृति, विषय-भोगों में अनासक्ति का होना। सात्त्विक मन स्वभावत: ही निर्दोष तथा विकार रहित होता है। मन के दो अन्य प्रकार (राजसिक, तामसिक) स्वाभावत: ही विकृति वाले होते हैं।

राजसिक मन के लक्षण - निरन्तर दु:खी रहना, असन्तोष, किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए निरन्तर भ्रमण या प्रयत्न करना, धैर्य का अभाव, अहंकार, असत्यभाषण, क्रूरता, दम्भ, गर्व, आनन्द की इच्छा, काम तथा क्रोधादि राजसिक मन के लक्षण हैं।

तामसिक मन के लक्षण - अत्यधिक निराशा, नास्तिक बुद्धि, अधर्माचरण, मन्दबुद्धिता, आत्मविषयक अज्ञान, अपकार के भाव, पापवृत्ति अन्याय में प्रवृत्ति और निद्रा आदि तामसिक मन के लक्षण हैं।

मन पर संयम न होने से इन्द्रियाँ विकृत हो जाती हैं। इन्द्रियों के विकृत होने से मनुष्य शक्तिहीनता का अनुभव करने लगता है। मन के अधिक मलिन होने पर मृगी, उन्माद पागलपन आदि विभिन्न रोगों की उत्पत्ति होती है।

योगाभ्यास से मनुष्य में जो दिव्य शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, वह नियमित और अनुशासित मन का ही परिणाम है। मानसिक शक्ति को ठीक रखने के लिए निम्न नियमों का पालन करना चाहिए -

१. सर्वदा सत्य बोलें।

२. किसी भी अवस्था में मनोमालिन्य न होने दें।

३. स्त्री, मद्य तथा अन्य दुर्व्यसनों के जाल में न फँसें।

४. किसी प्रकार की हिंसा न करें।

५. कष्टदायक और तनावपूर्ण व्यवहार को छोड़ दें।

६. मन पर अनुशासन रखें।

७. मधुर वचन बोलें।

८. मन और शरीर को शुद्ध रखें।

९. धैर्य धारण करें।

१०. दूसरों को दान दें।

११. आत्म (स्वयं) का निग्रह करें।

१२. विद्वानों, पूज्य जनों और वृद्धों की सेवा करें।

१३. स्वभाव को सरल रखें तथा दूसरों पर दया करें।

१४. मन को सात्त्विक बनाने वाले आहार का सेवन करें।

१५. अपने नित्य कर्मों पर नियन्त्रण रखें।

१६. देश, काल, स्थिति और स्थान के अनुसार व्यवहार करें।

१७. कठिन परिस्थितियों में अपने प्रयत्नों से उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करें तथा यश की प्राप्ति से मुख न मोड़ें।

१८. बेंत की भाँति नम्र वृत्ति धारण करें।

१९. उत्तम आचरण करें।

२०. मन और शरीर की पूरी शक्ति लगाकर कार्य पूर्ण करें।

२१. इन्द्रियों द्वारा धर्मानुसार आचरण करें।

२२. आत्म-संयम रखनेवालों का अनुसरण करें।

२३. सत्कर्मों का ग्रहण और असत्कर्मों का परित्याग करने का अभ्यास करें।

२४. यथासमय कोई काम सिद्ध न हो तो विवेक से अपने विकल्पों को खोजें।

२५. सद्वृत्त का पालन करें।

२६. काम को संकल्पपूर्वक त्याग से जीतें प्रजननेन्द्रिय और उदर को धैर्य से वश में रखें। नेत्रों की सहायता से हाथों-पैरों को अपवित्र कार्य में लगने से रोकें। मन से विचार कर नेत्रों और कानों को दूषित विषयों में प्रवृत्त होने से रोक दें। उत्तम कार्य के

www.thearyasamaj.org

द्वारा मन और वाणी की रक्षा करें। क्रोध को शान्ति, धैर्य और क्षमा से वश में करें। लोभ पर सन्तोष से अंकुश लगावें। दान देने का स्वभाव बनाएँ।

उपर्युक्त नियमों का पालन करने से मन रजोगुण और तमोगुण से प्रभावित न होकर, सात्त्विक ही बना रहता है।

योग और मानसिक स्वास्थ्य

'गोरक्षशतक' में कहा है -

आसनेन रजो हन्ति, प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी, प्रत्याहारेण सर्वदा।

योग के साधक आसनों के अभ्यास से रजोगुण की निवृत्ति, प्राणायाम से पापवृत्तियों का निवारण और प्रत्याहार से मन के विकारों को दूर करते हैं।

योग का उद्देश्य ही चित्त की वृत्तियों का निरोध करना है। मन के व्यापार को वृत्ति कहते हैं। इस शरीर की उपमा रथ से की गई है जिसका स्वामी आत्मा, सारथि बुद्धि, रसना (लगाम) मन और घोड़े इन्द्रियाँ हैं। मन की लगाम ढीली छोड़ देने पर इन्द्रियों के घोड़े नियन्त्रण से बाहर होकर शरीर और उसके स्वामी आत्मा को क्षतिग्रस्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

आत्मा बुद्धि के अर्थों का निश्चय करके मन को प्रेरणा देता है। मन इन्द्रियों के साथ युक्त होता है। इन्द्रियाँ विषयों के साथ सम्बन्धित होकर उस विषय का ज्ञान कराती हैं।

मन के सम्बन्ध में हमें यह तथ्य जान लेना चाहिए कि मन एक जड़ पदार्थ है, चेतन नहीं। जड़ पदार्थ बिना चेतन के अपने-आप कोई क्रिया नहीं कर सकता।

दूसरी जानने योग्य बात यह है कि मन एक समय में एक ही विषय का ज्ञान कर सकता है, अनेकों ज्ञान एक साथ नहीं। कहीं पर एक-साथ अनेक क्रियाओं का होना पाया जाता है तो इसके पीछे मन की तीव्र गति ही कारण है। जैसे कोई व्यक्ति साइकिल चला रहा है, वह हैण्डल के हाथ भी छोड़ देता है, उलटा पैडल भी मार रहा है और साथ में बोल भी रहा है। कोई विद्यार्थी पढ़ने के साथ रेडियो से गाना भी सुन रहा है। यह मन की तीव्र गति का ही परिणाम हैं वस्तुतः मन एक समय में एक ही वस्तु का ज्ञान करता है।

इन दोनों बातों को जान लेने पर हमें यह जान लेना चाहिए कि मन हमारा उपकरण मात्र है। यह हमारा दास है। हम इसके दास नहीं। जब भी मन में कोई वृत्ति उत्पन्न हो, उस समय मन का साथ न देकर यदि हम साक्षी-भाव से या तटस्थ होकर दर्शक की भाँति देखते रहें तो कुछ समय में मन की वृत्ति अपने-आप ही शान्त हो जाती है। इसी भाँति प्रयत्नपूर्वक मन को एक ही विषय पर एकाग्र करें तो वह दूसरे का चिन्तन करेगा ही नहीं।

आसनों का मन पर प्रभाव

स्थिरसुखमासनम् - आसन शरीर की वे स्थितियाँ हैं जिनमें शरीर किसी विशिष्ट अवस्था में कुछ समय तक सुखपूर्वक स्थिर बना रहता है। आसन झटके से किए जाने वाले व्यायाम नहीं हैं। इनका अभ्यास करते समय धीरे-धीरे किसी अंग को इच्छित आसन की मुद्रा में स्थापित किया जाता है, झटके के साथ नहीं। इस निष्क्रिय कर्षण (Passive Stretching) का नाड़ी-मण्डल पर शान्त प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप नाड़ी-मण्डल के आवेग मन्द पड़ जाने से मन भी शान्त हो जाता हे।

भावनाएँ मांसपेशियों की तान (Muscletone) को प्रभावित करती हैं। कोई भी हर्ष का समाचार सुनने पर सीना गर्व से फूल जाता है। मुख पर प्रसन्नता, आशा और उत्साह के भाव प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार किसी शोक का समाचार सुनते ही ग्रीवा नीची तथा मुखमण्डल मुर्झा जाता है। आसनों द्वारा मांसपेशियों की तान को

नियन्त्रित करके भावनाओं को भी संयमित किया जा सकता है। शवासन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्राणायाम का मन पर प्रभाव

'हठ प्रदीपिका' में कह है - **चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।** प्राण और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन के रुकने पर प्राण (श्वास-प्रश्वास) और प्राण को रोकने पर मन भी स्वत: ही रुक जाता है। मन सूक्ष्म और प्राण स्थूल हैं। स्थूल का निरोध करना सरल है। इसलिए प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास की गति को रोक देने पर मन स्वत: ही रुक जाता है। कैसे भी कुविचारों का मन में ज्वार आया हुआ हो, श्वास को बलपूर्वक बाहर फेंक उसे बाहर ही यथाशक्ति रोककर रखें। जब श्वास भीतर आने लगे तो उसे पुन: धक्का देकर बाहर ही रोकें।ऐसे २-३ बार धक्के देकर बाहर रोकने से विचारों का तूफ़ान एकदम शान्त हो जाएगा। ऐसे ही भस्त्रिका प्राणायाम से मन मूर्च्छित हो जाता है। दीर्घ श्वसन से मानसिक तनाव में शिथिलता आती है। जितना श्वास को धीरे लेने और छोड़ने का अभ्यास किया जाएगा, मन उतना ही शान्त होने लगेगा।

प्राणायाम का यह लाभ तात्कालिक ही नहीं है। इसके अभ्यास से फुफ्फुस-प्रकोष्ठ सक्रिय और लचीले बनकर दिनभर दीर्घ श्वसन करते रहते हैं। जब हम प्रश्वास को लम्बा करते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि हमारे मन का तनाव भी हट रहा है। भ्रामरी प्राणायाम से मन के तनाव, चिन्ता, डिप्रेशन (अवसाद) तथा कुण्ठाओं को दूर करने में बहुत सहायता मिलती है। कपालभाति, भस्त्रिका और आभ्यन्तर प्राणायाम के अभ्यास से तमोगुण की निवृत्ति होकर मन में स्फूर्ति एवं उत्साह का संचार होता है।

सत्संगति का मन पर प्रभाव

साधु स्वभाव के सदाचारी सज्जन लोगों का संग करने को सत्संगति कहते हैं। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। वह जैसे लोगों में रहता है उसका चिन्तन और स्वभाव वैसा ही बन जाता है। जिन कार्यों को हम बार-बार करते हैं, आगे जाकर वही विचार और कार्य स्वभाव या आदत में बदल जाते हैं।

सत्संगति के लिए बाल्यकाल से ही ध्यान देना चाहिए। बच्चों का हृदय सुकोमल होता है। इस समय जो संस्कार उनके चित्त पर अंकित हो जाते हैं, उनका प्रभाव जीवन-भर बना रहता है। 'जैसी संगत, वैसी शोभा' इस लोकोक्ति में सच्चाई है उदाहरण के लिए आकाश से पानी की बूँद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती-जैसी प्रतीत होती है। वही बूँद केले में गिरकर कपूर, सीप में मोती, सर्प के मुख में जाने से विष तथा तपे हुए तवे पर गिरने से उसका नामो-निशान भी नहीं रहता। एक ही बूँद ने जैसी-जैसी उत्तम, मध्यम और अधम संगति की, वैसी ही बन गई। काला-कलूटा भौंरा फूल की संगति करने के कारण देवताओं के चरणों में स्थान पाता है। यह सत्संगति का ही फल है चन्दन को लोक में शीतल माना गया हैं चन्दन से भी शीतल चन्द्रमा की चाँदनी होती है। परन्तु साधु लोगों की संगति चन्दन और चाँदनी से भी अधिक शीतलता प्रदान करने वाली है। कामी, क्रोधी और हिंसक व्यक्ति भी सज्जन लोगों के संग में रहकर अपने हिंसक स्वभाव को छोड़ देते हैं।

शठ सुधरहिं सत् संगति पाही।
पारस परस कुधातु सुहाही।।

इसी भाँति दुर्जन लोगों की संगति करने से भले व्यक्ति भी दुष्कर्म में प्रवृत्त होने लगते हैं। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य जैसे मनस्वी व्यक्ति भी दुर्योधन के संग में रहने के कारण राजा विराट् की गायों का अपहरण करने के लिए गए। अग्नि जैसी पवित्र वस्तु जब लोहार की भट्टी में लोहे का संग कर लेती है तो वह भी लोहे के साथ ही घन से पीटी जाती है।

बैठ कुसँग चाहे कुशल, तुलसी यह अफ़सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावण बसा पड़ोस।।

रावण के पड़ोस में बसने के कारण समुद्र को भी बन्धना पड़ा। एक विचारक ने कहा है - कुसंग और काले सर्प में कुसंग ही अधिक भयंकर है। सर्प के डसे जाने पर उसकी चिकित्सा सम्भव है। यदि चिकित्सा न हो सके तो व्यक्ति एक बार ही मरता है। परन्तु जिसे कुसंग के विषधर ने काट लिया है, उसका उद्धार अनेक जन्मों तक नहीं होता।

भोजन का मन पर प्रभाव

हमारे शरीर की वृद्धि, स्थिति और कार्यशक्ति जिस प्रकार भोजन पर आधारित है, वैसे ही हमारा मन भी भोजन से प्रभावित होता है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। अन्न का स्थूल भाग मल के रूप में शरीर से निष्कासित कर दिया जाता है। मध्य भाग से मांसादि का निर्माण होता है। जैसे दूध को मथने से उसका सार भाग मक्खन दूध के ऊपर एकत्रित हो जाता है, उसी भाँति अन्न का पाचन होकर उसके सूक्ष्म भाग से मन का निर्माण होता है। कहा भी है - 'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन'। आचार्य चरक भी अन्न द्वारा मन का बलिष्ठ और शक्ति सम्पन्न होना स्वीकार करते हैं

मन का निर्माण प्रकृति के सत्त्वगुण से हुआ है यही मन जब रजोगुण और तमोगुण से आविष्ट हो जाता है तो अनेक मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। यदि गम्भीरता से विचार करें तो विदित होगा कि अधिकतर रोग अस्वस्थ मानसिक पृष्ठभूमि में ही पनपते हैं। मन के स्वस्थ हो जाने पर व्यक्ति सामान्य औषध लेने से ही स्वस्थ हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य के लिए सत्त्वगुण-प्रधान भोजन लेना चाहिए। यदि हम राजसिक भोजन करते हैं तो हमारा मन भी रजोगुणी और तामसिक भोजन से तमोगुणी हो जाएगा। ऐसे ही पाप का अन्न बिना परिश्रम के प्राप्त अन्न खाने से भी मन और बुद्धि मलिन हो जाती है।

प्रश्न - कैसे पुरुष पढ़ाने और शिक्षा करनेहारे होने चाहिएँ?

उत्तर- पढ़ानेवाले के लक्षण-

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।१।।

जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुखदुःखादि का सहन, धर्म का नित्य सेवन करने वाला, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ाकर अधर्म की ओर न खेंच सके, वह पण्डित कहाता।।१।।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते। अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्।।२।।

जो सदा प्रशस्त, धर्मयुक्त कर्मों का करने और निदित-अधर्मयुक्त कर्मों को कभी न सेवनेहारा, न कदापि ईश्वर, वेद और धर्म का विरोध और परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है, वही मनुष्य पण्डित के लक्षणयुक्त होता हैं।।२।।

-ऋषि दयानन्द

www.thearyasamaj.org

सद्वृत्तम्

शिष्टाचार, सदाचार

शिष्ट व्यक्ति या सज्जन पुरुष के आचार को शिष्टाचार या सदाचार कहते हैं। जो सत्यवादी, धर्मात्मा, त्यागी और परोपकारी जन हैं, उन्हें शिष्ट या सज्जन कहा गया है। उनके जीवन का अनुकरण करना ही शिष्टाचार कहलाता है। 'चरक संहिता' में इसे सद्वृत्त कहा है। यद्यपि यम-नियम भी सद्वृत्त के ही भाग हैं, परन्तु अन्य बहुत-सी व्यवहार-सम्बन्धी बातें भी शिष्टाचार के अन्तर्गत आती हैं। शिष्टाचार में व्यक्तिगत आचार, दूसरों के साथ व्यवहार और सभा आदि में कैसे जाएँ इन बातों का समावेश होता हे। सर्वप्रथम विद्यार्थियों के लिए शिष्टाचार-सम्बन्धी नियमों का उल्लेख करने के पश्चात् जनसाधारण के लिए सदाचार पर विचार-विमर्श किया जाएगा।

व्यक्तिगत शिष्टाचार

१. प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठकर शौच, दन्तधावन, व्यायाम स्नान करके कुछ समय ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के लिए देना चाहिए।

२. अपने से बड़े माता, पिता और गुरुजनों का प्रथम दर्शन होने पर उनको पैर छूकर अभिवादन करना चाहिए। इससे आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

३. स्नान करते समय दूसरे का कच्छा, तौलिया, साबुन और कंघे का प्रयोग मत करें। इनसे दाद, खुजली आदि चर्म-रोगों के लगने की आशंका रहती है।

४. नीचे पहनने वाले वस्त्रों की सफ़ाई का अधिक ध्यान रखना चाहिए। कुर्ते के बटन टूटे हुए हैं तो उन्हें लगाकर ही पहनें। फटे वस्त्र को सीकर उपयोग में लाएँ।

५. विद्यालय की जो वेशभूषा निश्चित हो, उसी को पहनना चाहिए। विद्यालय में भड़कीले वस्त्र, अधिक तंग, कसे हुए या अधिक ढीले पहनना अनुचित हे। विद्यालय में स्वच्छ वस्त्र पहनकर जाएँ।

६. अपने कक्ष में प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखने का स्वभाव बनाएँ, जिससे आवश्यकता होने पर वह वस्तु यथाशीघ्र प्राप्त की जा सके।

७. अपनी पुस्तक और अभ्यास-संचिका पर जिल्द चढ़ाकर रखें। पुस्तक पर अपना नाम लिखने से उसके खो जाने का भय नहीं रहता।

८. विद्यालय जाने से पहले उस दिन जिन विषयों को पढ़ाया जाना है, उनकी पुस्तक, अभ्यास-पुस्तिका, लेखनी तथा अन्य आवश्यक सामान को लेकर ही जाना चहिए।

९. जो कार्य लिखने या स्मरण करने का दिया गया हो, उसे पूरा करके ले-जाना चाहिए।

१०. विद्यालय में निश्चित समय से कुछ पहले पहुँचना चाहिए।

विद्यालय में शिष्टाचार

१. अपने गुरुजनों से प्रथम भेंट होने पर हाथ जोड़कर विनम्र भाव से उन्हें नमस्ते कहिए। ऐसे ही अपनी कक्षा के साथियों से भी अभिवादन करना चाहिए।

२. जिनसे विद्या ग्रहण करें, उन गुरुजनों का सम्मान और सेवा करना विद्यार्थी का परम धर्म है। जो विद्या देने वाले गुरु का सम्मान नहीं करता उसकी विद्या फलवती और यशस्वी नहीं होती।

३. यदि कक्षा में अध्यापक नहीं आया है तो उस

www.thearyasamaj.org

समय शोर मचाना गप्पें मारना उचित नहीं है ऐसे समय कक्षा-प्रतिनिधि (मॉनीटर) की आज्ञा के अनुसार कार्य करना अच्छा है।

४. यदि आपके सहपाठी की किसी विषय में अल्पयोग्यता है तो आपका यह नैतिक कर्तव्य है कि आप उसकी सहायता करे।।

५. कक्षा में पढ़ने के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे गप्प मारना, जोर से बोलना, अपशब्द बोलना, दूसरे विद्यार्थी का नाम बिगाड़कर बोलना, लड़ाई-झगड़ा करना या गुटबन्दी करना आदिकार्य विद्या-प्राप्ति में बाधक होने से त्यागने योग्य हैं।

६. विद्यार्थी को विनम्र होना चाहिए। उसे अपने कुल, धन-सम्पत्ति या कुशाग्र बुद्धि का अभिमान नहीं करना चाहिए।

७. पाठ पढ़ते समय अपना ध्यान वहीं पर केन्द्रित करने तथा मन लगाकर पढ़ने से आपको घर पर ट्यूशन करने की आवश्यकता नहीं होगी।

८. पाठ पढ़ते समय यदि कोई बात आपकी समझ में नही आती तो संकोच न करके अपना हाथ ऊपर खड़ा करें और गुरु की आज्ञा मिलने पर अपने प्रश्नों को पूछें।

९. कक्षा में विद्यमान फ़र्नीचर, फ़र्श, दीवार आदि को क्षतिग्रस्त करना या उन पर अपना नाम या अश्लील शब्द लिखना अशिष्ट कार्य है।

१०. विद्यालय से अवकाश होने पर सीधे घर लौट आना चाहिए।

बड़ों के साथ शिष्टाचार

१. अपने से बड़े लोगों से मिलें तो प्रथम आपको उनके पैर छूकर या हाथ जोड़कर 'नमस्ते' कहना चाहिए।

२. बड़ों के नाम के साथ 'जी' लगाकर ही सम्बोधन कीजिए। उन्हें कभी भी 'तू' या 'तुम' न कहकर 'आप' या अन्य सम्मानजनक शब्द का प्रयोग करें।

३. बड़े लोगों के सामने अधिक बोलना, ज़ोर से हँसना, ऊँचे आसन पर बैठना, अच्छे स्थान पर बैठना, उनके बैठने से पहले बैठना, असावधानी से बैठना, अनावश्यक चेष्टा करना, आदि वर्जित कर्म हैं।

४. बड़ों से बातचीत करते समय 'श्रीमान् जी', 'माननीय', 'महोदय' आदि शब्दों का व्यवहार करें। जब वे आपके किसी कार्य की प्रशंसा करें तब 'आपकी कृपा है' कहकर उसका उत्तर दें। उनकी बात से सहमति प्रकट करने के लिए 'जी हाँ', 'ठीक है' आदि वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए।

५. जब आप उनके साथ चल रहे हों, तब उनके सामान को स्वयं लेकर चलें। आप यदि उन्हें मार्ग दिखलाने के लिए साथ चल रहे हैं, तब उनके आगे अथवा बाएँ होकर चलें, अन्यथा पीछे चलना चाहिए।

६. जब बड़े लोग पुरस्कृत करें या कुछ उपहार दें, तब पुरस्कार या वस्तु को लेने के पश्चात् 'आपका बहुत धन्यवाद' कहना न भूलें।

७. जब बड़े लोगों के साथ चल रहे हों, तब स्वयं आगे बढ़कर द्वार, परदा या गाड़ी की खिड़की खोलनी चाहिए और उनके आ जाने पर उन्हें धीरे से बन्द करना चाहिए।

८. जब बड़े लोग आपसे कोई बात पूछें तो खड़े होकर हाथ जोड़ें और विनम्र शब्दों में उत्तर दें। अहंकार प्रदर्शन करते हुए बोलना या दाहिने-बाएँ और वक्र दृष्टि रखकर बोलना उचित नहीं है।

९. जब बड़े लोगों के पास जाना हो तो उनके सम्मानार्थ फल अथवा अन्य वस्तु अपने सामर्थ्य के अनुसार ले-जाकर भेंट करनी चाहिए।

१०. बड़ों से विदा करते समय उन्हें छोड़ने के लिए गाड़ी या मुख्य द्वार तक साथ जाएँ। उनका सामान यथास्थान रखवाने में उनकी सहायता करें और

www.thearyasamaj.org

'आपके पधारने का धन्यवाद', 'फिर कभी दर्शन दीजिएगा' आदि सम्मानसूचक शब्दों को कहकर उनको विदा करें। यदि आप उनसे विदा ले रहे हैं तो उनसे आज्ञा लेना न भूलिए।

सभा में शिष्टाचार

१. सभा या उत्सव में जब जाएँ तो समुचित वेशभूषा और केशादि को प्रसाधित करके ही जाना चाहिए। अच्छे वस्त्रों वाला सभा को जीत लेता है।

२. सभा में निर्धारित समय पर पहुँचना चाहिए। यदि किसी कारणवश विलम्ब हुआ है तो पीछे बैठें अथवा कारण बतलाकर विलम्ब के लिए खेद प्रकट करें।

३. सभा में अपने लिए जो स्थान निश्चित है, वहीं पर बैठें अथवा ऐसे स्थान पर बैठना उचित है जहाँ से आपको उठने के लिए किसी को कहना न पड़े।

४. सभा में बैठकर मुख्य विषय पर ही ध्यान को केन्द्रित रखना चाहिए। परस्पर बातें करना, तिनके तोड़ना, भूमि कुरेदना, ऊँघना, अंगुलियाँ चटखाना आदि कार्य वर्जित हैं।

५. आपको यदि कोई बात कहनी है तो सभापति की आज्ञा लेकर ही बोलना चाहिए। अपने स्थान पर ही बोलना या चिल्लाना उचित नहीं है। यदि आपको अच्छा नहीं लग रहा तो वहाँ से चुपचाप उठकर चले आना चाहिए।

६. सभा के मध्य से उठकर जाना शोभा नहीं देता। यदि किसी कारणवश जाना ही पड़े तो अध्यक्ष से अनुमति लेकर जाएँ, अथवा क्षमा-याचना या संकेत करके ही जाना चाहिए। अथवा, पहले ही ऐसे स्थान पर बैठें जहाँ से जाने में किसी को असुविधा न हो।

७. अपने जूते, वाहन आदि नियत स्थान पर ही रखें। यदि इनके लिए टोकन दिए जा रहे हों तो उन्हें प्राप्त करके ही सभा में बैठें जिससे कि आप निश्चिन्त होकर बैठ सकें और बाद में कोई कठिनाई न हो।

८. यदि बहुत-से लोगों के हित की कोई बात है और आपके स्वार्थ की कुछ हानि भी हो रही हो तो आपको उस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए।

९. सभा में किसी पर व्यक्तिगत आरोप या लांछन लगाना, कटु शब्दों का प्रयोग करना अथवा ईर्ष्या और द्वेषपूर्ण व्यवहार करने के स्थान पर अपने सैद्धान्तिक पक्ष पर जोर देना अधिक उपयोगी है।

१०. सभा में जब असत्य द्वारा सत्य का गला घोंटा जा रहा हो, अधर्म धर्म को दबा रहा हो और अन्याय न्याय पर हावी हो रहा हो, उस समय जो सभासद मूक दर्शक बना रहता है वह मानो मृतक के समान है।

सार्वजनिक स्थानों पर शिष्टाचार

१. सार्वजनिक स्थान राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। इनकी स्वच्छता और रक्षा का उत्तरदायित्व हम सबका है।

२. सड़कों पर कूड़ा-कर्कट फेंकना, नलों को खुला छोड़ना, पार्कों या दर्शनीय स्थलों में खा-पीकर वहीं छिलके या रद्दी फेंक देना पुष्पों को तोड़ना, सड़क के किनारे, नदी, तालाब या तीर्थ-स्थल के पास मलमूत्र त्यागना आदि निन्दित कर्म हैं।

३. बिना टिकट यात्रा करना सामाजिक अपराध है।

४. सार्वजनिक स्थानों, गाड़ी की सीट या दीवारों पर चित्र बनाना, नाम लिखना या अश्लील शब्द लिखना अशोभनीय है।

५. पुस्तकालय की पुस्तक से पृष्ठ फाड़ना, पुस्तक में कुछ लिखना या नीचे रेखा खींचना अच्छे लोगों का कार्य नहीं है।

६. पानी पीने के स्रोत, नदी, तालाब, कुआँ, बावड़ी या झरने पर वस्त्र धोना, स्नान करना अथवा अन्य

www.thearyasamaj.org

किसी प्रकार से जल को प्रदूषित करना निन्दनीय अपराध है।

७. सार्वजनिक वितरण-प्रणाली में अपने क्रम या पंक्ति में रहना चाहिए। अपने परमिट से अधिक वस्तुओं की प्राप्ति का प्रयत्न करना त्याज्य है।

८. सार्वजनिक उपयोग में आने वाले पार्क, सड़क, चौपाल, धर्मशाला आदि पर कब्ज़ा करना, सड़कों पर अपने वाहन खड़े करके यातायात में बाधा डालना, रास्ते में खड़े होकर हँसी-मज़ाक करना इत्यादि अच्छे कार्य नहीं हैं।

९. स्त्रियों के प्रयोग में आने वाले स्थान, स्नानागार, घाट, शौचालय और बस में आरक्षित सीटें उन्हीं के लिए सुरक्षित रखनी चाहिएँ।

१०. यात्रा करते समय बच्चे वाली महिलाओं और वृद्धों को अपना स्थान देना मानवता का प्रतीक है।

परस्पर व्यवहार

१. आपस में मिलने पर स्वयं पहल करके अभिवादन करना चाहिए।

२. मित्र से भेंट होने पर अभिवादन के पश्चात् उसकी तथा परिवार की कुशलता का समाचार पूछना आपको उसका प्रिय बना देता है।

३. किसी अपरिचित व्यक्ति से पहली बार मिलने पर उसकी जाति, काम या आय के विषय में पूछना उचित नहीं है।

४. जो समय जिस व्यक्ति से मिलने या कार्यविशेष के लिए दिया गया हो, उसका पालन करना आपका नैतिक कर्तव्य है।

५. आपने जिस व्यक्ति से जो प्रतिज्ञा की हो, उसको यथाशक्ति पूरा करना चाहिए। जैसी हानि प्रतिज्ञा भंग से होती है, वैसी अन्य किसी कार्य से नहीं हाती।

६. जहाँ तक हो सके, किसी से कुछ माँगने से बचना चाहिए। यदि कार्य नहीं चले तो उसके पूरा हो जाने के पश्चात् उसकी वस्तु को यथाशीघ्र सुरक्षित लौटा देना चाहिए।

७. बिना आज्ञा के किसी की वस्तु का उपयोग करना अनुचित है।

८. जब दो व्यक्ति आपस में बातें कर रहे हों, तो उनके मध्य में जाकर उनकी बात सुनना या उनकी बात काटकर अपनी बात कहना अनुचित है।

९. बिना बुलाए किसी के घर जाना, बार-बार जाना आदि कार्य मित्रता को समाप्त कर देते हैं। कहा भी है – 'मान घटे नित पर-घर जाए'।

१०. किसी के जन्मदिन या अन्य प्रसन्नता के अवसरों पर बिना निमन्त्रण के भी बधाई सन्देश भेजना चाहिए। इसी भाँति शोक के अवसर पर बिना बुलाए भी वहाँ जाकर अपनी संवेदना अवश्य प्रकट करनी चाहिए।

११. किसी ने आपका उपकार किया हो तो उसकी कृतज्ञता माननी चाहिए और बदले में उपकार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

१२. धर्म से द्वेष रखने वाले, राजद्रोही और राष्ट्रद्रोही मनुष्यों की संगति न करें, अन्यथा स्वयं भी दु:ख उठाना पड़ता है।

१३. दूसरों के दोष देखने और दोषारोपण करने से ये दोष अपने में भी आ सकते हैं। इसी भाँति अपनी प्रशंसा स्वयं करना बुद्धिमत्ता नहीं है।

१४. दूसरों की गुप्त बातों को सुनना, बताना, निन्दा या चुग़ली करना निन्दनीय कार्य हैं।

१५. किसी के समाने अपनी शत्रुता, अपमान और अपने अवगुण को नहीं बतलाना चाहिए, अन्यथा कभी सबके सामने उपहास का पात्र बनना पड़ता है।

www.thearyasamaj.org

१६. किसी दम्पति या आदरणीय व्यक्तियों के मध्य से नहीं निकलना चाहिए।

१७. वृद्ध पुरुष, अध्यापक, नेता तथा राजा, इनके साथ उद्दण्डता का व्यवहार न करें, न इनकी अधिक स्तुति करें।

१८. दूसरों की स्त्रियों को अपनी माता-बहिन के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के सदृश और सभी प्राणियों को अपने जैसा ही समझना चाहिए।

१९. सुखी लोगों से मैत्री, दुःखियों पर दया, पुण्यात्मा को देखकर प्रसन्नता और पापियों से उपेक्षा का व्यवहार रखने से मन प्रसन्न बना रहता है।

२०. जिस व्यवहार की हम दूसरों से अपेक्षा रखते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें उनके साथ करना चाहिए।

अन्य सद्वृत्त

१. असत्य भाषण न करें। सदा सत्य बोलें।

२. सदा उत्तम जनों जैसी वेशभूषा धारण करें।

३. अपने घर आए अतिथि को पहले भोजन कराएँ, पश्चात् स्वयं भोजन करें।

४. किसी की धन-सम्पत्ति या मान-प्रतिष्ठा को देखकर ईर्ष्या या द्वेष नहीं करना चाहिए, अपितु जिन कारणों से उस व्यक्ति को यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है उन गुणों को अपने में धारण करने की प्रतिस्पर्धा करना उचित है।

५. मल-मूत्र के वेगों को न रोकें।

६. प्रातः-सायं के सन्धिकाल में अध्ययन करना और सोना मना है।

७. बहुत बढ़-चढ़कर बातें न करें।

८. अपने बन्धु, प्रिय, आपत्ति में सहायक और अपने गुप्त भेद जानने वालों को अपने से अलग न करें।

९. सब पर विश्वास न करें तथा न ही सब पर अविश्वास करना उचित है।

१०. किसी बात को हर समय मन में रखकर उस पर सोच-विचार करना उचित नहीं है।

११. अपने सामर्थ्य से अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

१२. बिना परिश्रम या अन्याय से धन प्राप्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

१३. दाँत, श्रृंग, नखों वाले हिंसक प्राणी, सर्प तथा दुष्ट व्यक्ति से दूर रहना ही अच्छा है।

१४. अकारण ही इधर-उधर घूमना, वृक्षों पर चढ़ना, पर्वतों के शिखरों पर चढ़ना, सुनसान जंगल या सूने मकान में प्रवेश करना, शमशान में ठहरना - ये सब वर्जित कर्म हैं।

१५. अज्ञात जल में प्रवेश नहीं करें। ऐसे ही तीव्र वेगवाली नदी को तैरने का साहस करना प्राणों को संकट में डाल देता है।

१६. रात्रि में अकेले घर से बाहर नहीं जाएँ। यदि जाना आवश्यक हो तो किसी साथी को साथ लेकर सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करके ही जाएँ।

१७. बिना बुलाए कहीं पर भी न जाएँ, परन्तु यज्ञादि उत्तम कर्मों को देखने के लिए मना नहीं है।

१८. दूसरों के घर में देर रात्रि तक ठहरना दूषक-कारक है।

१९. धर्मशास्त्र-प्रोक्त आजीविका से अपना जीवन-निर्वाह करना प्रशस्त है। तस्करी, चोरी, शराब, अफ़ीम आदि मादक वस्तुओं या पापयुक्त कर्म से प्राप्त आजीविका त्याज्य है।

२०. धन की अपेक्षा धर्म की यत्नपूर्वक रक्षा करें। धन के चले जाने पर भी व्यक्ति की विशेष हानि नहीं होती, परन्तु वृत्त (सदाचार, चरित्र) के चले जाने पर तो उसका सर्वस्व ही लुट जाता है।

www.thearyasamaj.org

व्यक्तित्व का विकास

व्यक्ति के समस्त गुणों को व्यक्तित्व कहते हैं। सामान्य अर्थ में व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के उन प्रभावक गुणों से होता है जो दूसरों पर विजय पाने में सहायक होते हैं।

व्यक्तित्व का विकास - व्यक्तित्व के विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि सभी विकासों का समावेश होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व का सम्बन्ध वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों से है। व्यक्तित्व को हम किसी व्यक्ति के चरित्र से पृथक् नहीं कर सकते।

१. **वंशानुक्रम** - ये तत्त्व जन्मजात होते हैं जो व्यक्ति को अपने माता-पिता तथा पूर्वजों से मिलते हैं। इनमें अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से स्रवित होने वाले हारमोन, स्नायुमण्डल, शारीरिक रचना, मन एवं बुद्धि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

२. **वातावरण** - व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है इसलिए परिवार, समाज, विद्यालय तथा वातावरण का उस पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। परिवार में माता-पिता, वृद्ध जन तथा परिवार के अन्य सदस्यों का आचरण जैसा होगा बालक उनका ही अनुकरण करेगा। जिस विद्यालय में वह शिक्षा ग्रहण करता है। वहाँ के छात्र, अध्यापक, शिक्षा, खेलकूद आदि की सुव्यवस्था होने से विद्यार्थी के जीवन में अनुशासन, संयम, परिश्रम करने की प्रवृत्ति एवं ज्ञान-विज्ञान में अभिरुचि इत्यादि गुण विकसित होते हैं।

अन्तर्मुखी व्यक्तित्व - ऐसा व्यक्ति अपने में ही मस्त, एकान्तप्रिय, अल्पभाषी, लज्जाशील, साहित्यिक आध्यात्मिक रुचिवाला, सत्य का अन्वेषक, तार्किक, भावुक, क्रोधी और शंकालु होता है।

बर्हिमुखी व्यक्तित्व - अत्यन्त सामाजिक, मिलनसार, बात करने में कुशल, मनोविनोदी, आदर्शवादी, व्यवहार पटु, धैर्यवान्, परिश्रमी, रूढ़िवादी, अधिकार प्रिय, स्वार्थी और आक्रामक गुणों वाला बहिर्मुखी व्यक्तित्व कहलाता है। कुछ लोगों में इन दोनों गुणों का संमिश्रण होता है।

एक अच्छे व्यक्तित्व में निम्न विशेषताएँ होती हैं -

१. **आत्मचेतना** (Self Conciousness) : आत्मचेतना वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सम्बन्ध में जानने लगता है कि वह कौन है? वह यह भी जान जाता है कि दूसरे व्यक्ति उसके विषय में क्या सोचते हैं? यही ज्ञान वास्तविक व्यवहारों को निर्धारित करता है। पशु तथा छोटे बालकों में आत्मचेतना नहीं होती इसलिए उनका व्यक्तित्व भी नहीं होता।

२. **गत्यात्मकता** (Dynamicity) : अच्छे व्यक्ति स्थिर या जड़बुद्धि नहीं होते। वे सदैव अपना तथा बाह्य स्थितियों का विश्लेषण करते रहते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपने मूल्यों विचारों, धारणाओं तथा आदर्शों का परिवर्तन करते रहते हैं। इन परिवर्तनों का उद्देश्य सदैव विकासात्मक होता है। विकास की यह प्रक्रिया आजन्म चलती रहती है।

३. **शारीरिक संरचना** (Physical Construction) : अच्छे व्यक्तित्व का तीसरा लक्षण अच्छी शारीरिक संरचना का होना है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। शारीरिक सम्पूर्णता जब तक नहीं होगी तब तक व्यक्ति का व्यवहार भी सामान्य नहीं होता और न ही उसका विकास संतुलित रूप में होता है। प्राय: देखा जाता है कि विकलांग या दुर्बल व्यक्ति हीन भावना या कुण्ठा से ग्रस्त होते हैं।

www.thearyasamaj.org

४. **मानसिक स्वास्थ्य** (Mental Health) : व्यक्तित्व मनादैहिक शक्तियों का संगठन है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों के समायोजन से ही व्यक्तित्व निखरता है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति ही अपनी भावनाओं तथा संवेगों पर नियन्त्रण, संतुलित व्यवहार, तर्क, चिन्तन आदि भली भांति कर सकता है।

५. **समायोजन शक्ति** (Power to Adjust) : अच्छे व्यक्तित्व का धनी पुरुष आन्तरिक जीवन तथा बाह्य वातावरण के साथ अपने को समायोजित या तालमेल बिठाने की शक्ति रखता है। उसमें समयानुसार विनम्र होना, दृढ़ संकल्प से परिस्थितियों का मुकाबला करने की क्षमता होती है। यह बेंत की भाँति नम्र और चट्टान के समान दृढ़ भी होता है। (**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि**) की लोकोक्ति उसके जीवन में चरितार्थ होती है।

६. **सामाजिकता** (Sociability): मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज से भिन्न मानव की कल्पना आज के युग में नहीं की जा सकती। प्रत्येक कार्य उसे दूसरे लोगों का सहयोग लेना ही पड़ता है। समाज के बिना व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है। जब हमें समाज में ही रहना है तो सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, मूल्यों, धारणाओं तथा रीति-रिवाजों का पालन एवं समाज के दूसरे सदस्यों के साथ मिलकर चलना चाहिए। जैसा देश वैसा भेष। अच्छे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति परिवर्तित वातावरण के साथ शीघ्र ही अपने को समायोजित कर लेते हैं।

८. **सन्तोष** (Satisfaction): अच्छे व्यक्तित्व का सन्तोष विशेष गुण है। पूर्ण पुरुषार्थ करने पर जो कुछ प्राप्त हो उसी में प्रसन्न रहना और आगे के लिए पुरुषार्थ करना सन्तोष कहलाता है। पुरुषार्थ न करने का नाम सन्तोष नहीं है। सन्तोषी सदा सुखी रहता है। कहा भी है –

गोधन गजधन वाजिधन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूलि समान।।

९. **महत्त्वाकांक्षा** (Ambition) : हर पल आगे बढ़ने की आकांक्षा का होना। व्यक्ति जैसा सोचता है वैसा करता है। जिसका चिन्तन ही निराशाजनक है वह जीवन पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता।

१०. **जीवन का उद्देश्य** (Perposiousness) : सुनिश्चित उद्देश्य व्यक्ति के प्रत्येक कार्य तथा व्यवहार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य बन जाने पर उसकी समस्त क्रियाएं एवं चिन्तन केन्द्रित हो जाता है। जैसे सूर्य की किरणें उत्तल लैंस द्वारा एक केन्द्र बिन्दु पर एकत्रित होकर उस स्थान पर रखी वस्तु को जला देती है। जीवन में उद्देश्य के बिना परिश्रम निष्फल होता है। अपने लक्ष्य को सामर्थ्य से कुछ बड़ा बनाएँ। यदि हम चाँद नहीं बन सके तो सितारे तो बन ही जाएँगे। जीवन का लक्ष्य बनाकर उसे सायंकाल तथा प्रातःकाल दोहराना चाहिए। परन्तु स्मरण रहे मनुष्य जीवन का लक्ष्य – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करना ही है।

व्यक्तित्व का विकास

माता, पिता और गुरु का योगदान व्यक्तित्व के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अच्छे व्यक्तित्व में शीलगुणों (Traits) का होना आवश्यक है। शीलगुण वे होते हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को निश्चित करते हैं। ये गुण व्यक्ति में स्थायी होते हैं। विदुर नीति में पुरुष को सुप्रसिद्ध करने के लिए निम्न आठ गुण बतलाए हैं –

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च। पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च।।

(विदुर. १/१०४)

उत्तम बुद्धि, उत्तम कुल, जितेन्द्रियता, विद्या, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान देना और किए हुए उपकार को मानना ये आठ गुण व्यक्ति को यशस्वी बनाते हैं अन्यत्र विद्या, सुन्दर स्वास्थ्य, मधुरवाणी, वेशभूषा एवं विद्या द्वारा व्यक्ति सुशोभित होता है, यह कहा है। इनमें से कुछ गुण तो पूर्वजन्म के संस्कार एवं वंशपरम्परा से आते हैं और कुछ गुणों का विकास अभ्यास द्वारा किया जा सकता है।

व्यक्तित्व विकास के उपाय

१. **उत्तरदायित्व को वहन करना** - जब व्यक्ति किसी कार्य को करने की जिम्मेदारी लेता है तो समझो उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो गया। जो लोग स्वयं जिम्मेदारी या उत्तरदायित्व लेने में आनकानी करते हैं वे केवल दूसरों को दोष देने तक ही सीमित रह जाते हैं। जिम्मेदारी और स्वतन्त्रता हाथ में हाथ डाले चलती है। किसी समाज का पतन चोर-उचक्कों से इतना नहीं होता जितना अच्छे लोगों द्वारा दायित्व न लेकर निठल्ले बैठे रहने से होता है। जब अच्छे लोग निष्क्रिय होकर बैठ जाएँ तो बुराई को पनपने का अवसर मिल जाता है।

२. **दूसरों की बातों को ध्यान से सुनना** - यदि आप चाहते हैं कि दूसरे लोग आपकी बात को ध्यान से सुनें तो आपको भी दूसरों की बातों को ध्यान से सुनना चाहिए। इससे दूसरा व्यक्ति अपने आपको महत्त्वपूर्ण समझने लगता है तथा फिर वह आपकी बात को भी ध्यान से सुनता है। अच्छा श्रोता बनने के लिए दूसरे व्यक्तियों को उनकी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करकना चाहिए। उनसे प्रश्न पूछें। बीच में बाधा न डालें। कहने वाले के अभिप्राय को समझने का प्रयत्न करें।

३. **उत्साह** - उत्साह के बिना कोई बड़ा काम पूरा नहीं होता। उत्साह और सफलता साथ-साथ चलते हैं। उत्साह से आत्मविश्वास बढ़ता है। जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। उत्साह और किसी कार्य को करने की इच्छा व्यक्ति को सफलता के चरम शिखर पर ले जाती है। उत्साह से आत्मबल बढ़ता है। उत्साह एक प्रकार की आदत है जिसे उत्साही पुरुषों के संग से सीखा जा सकता है।

४. **प्रतिज्ञा पूरी करना** - जैसी हानि प्रतिज्ञा भंग करने वाले की होती है वैसी दूसरों की नहीं। जिससे जैसी प्रतिज्ञा की हो उसे पूरा करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। प्राण जाए पर बचन न जाई। **कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्।** किसी काम को पूरा करने की प्रतिज्ञा कर लेने पर हर स्थिति में उसे पूरा करना सुदृढ़ व्यक्तित्व की पहचान है। अपने वचन को निभाने वाले का सब विश्वास करते हैं।

५. **कृतज्ञ होना** - किए हुए उपकार को मानना, उपकार करने वाले को धन्यवाद देना तथा समय आने पर उसका प्रत्युपकार करना कृतज्ञता और उपकार को भुला देना कृतघ्नता है जिसका शास्त्रकारों ने कोई प्राशश्चित्त नहीं लिखा। कृतज्ञता व्यक्तित्व को निखारती है। हमारे माता-पिता ने अनेक कष्ट सहन कर हमारा पालन-पोषण किया है तो हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि वृद्धावस्था में उनकी हर सम्भव सहायता कर उन्हें सुखी रखें। परन्तु किसी पर उपकार करने के पश्चात् प्रत्युपकार की भावना नहीं रखनी चाहिए कि हमने अमुक व्यक्ति की इस कार्य में सहायता की इसलिए वह भी हमारा सहयोग करे। जो व्यक्ति उपकार करके उसका मूल्य प्रत्युपकार में चाहता है वह साधु नहीं है। जो अनुपकार करने वालों के साथ भी उपकार करता है वही साधु या सज्जन कहलाने योग्य है।

६. **विश्वास पात्र बनना** - परस्पर का व्यवहार विश्वास के द्वारा ही होता है। योग्यता के साथ किसी का विश्वास पात्र बनना भी आवश्यक है।

www.thearyasamaj.org

बिना विश्वासपात्र बने कोई भी जिम्मेदारी नहीं दी जा सकी। किसी से अच्छे सम्बन्ध बन जाने पर कष्ट सह कर भी उन्हें बनाए रखना चाहिए।

७. **विनम्र बनना** – विनम्रता सब गुणों का आधार है। सादगी और विनम्रता महान् बनने के दो गुण हैं। विनम्रता के बिना आत्मविश्वास केवल अहंकार ही है। सच्ची विनम्रता लोगों को आपकी ओर आकर्षित करती है। विनम्रता से अभिप्राय है दूसरों का भी ध्यान रखना और अहंकार को त्यागना। विनम्र व्यक्ति कम पढ़ा-लिखा होने पर भी जीवन पथ में आगे बढ़ता चला जाता है। शिष्टाचार का अभ्यास घर से ही प्रारम्भ करना चाहिए। बहुत से प्रतिभाशाली और कर्याकुशल व्यक्ति विनम्रता और शिष्टाचार की न्यूनता के कारण अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। अभिमानी का सिर नीचा होता है। अपने मार्ग में स्थित बड़ी चट्टान, वृक्ष, भवनादि को नदियाँ धराशायी कर देती हैं परन्तु उनके किनारों पर उगे बेंत के झाड़ को कुछ भी नहीं कहती क्योंकि उनमें पूर आने पर अन्य पदार्थ सीना ताने खड़े रहते हैं और बेंत विनम्र बन कर झुक जाता है जिसका नदियां कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। आम्रादि के वृक्ष फल आने पर नीचे झुक जाते हैं मानों प्रकृति हमें सन्देश दे रही है कि व्यक्ति को विद्वान्, धनवान्, बलवान बन जाने पर भी विनम्र ही बने रहना चाहिए। विद्या से विनय, विनय से पात्रता, योग्य पात्र होने पर धनादि की प्राप्ति और उससे सुख प्राप्त होता है।

८. **प्रसन्नचित्त रहना**- नर हो न निराश करो मन को। हँसमुख व्यक्ति सबका प्रिय और आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। हम अपनी दुर्बलता पर हँसना सीखें। इससे हमें पुनः उठने की शक्ति प्राप्त होती है। हँसमुख व्यक्ति के शरीर में रोगों से लड़ने की क्षमता का विकास होता है। परन्तु याद रहे -

हँसो हँसाओ इस जीवन में बड़ी चीज है हँसना।
पर ऐबों पर हँसना समझो पाप पंक में फँसना।।

किसी के दुर्गुणों पर हँसना, भद्दा मजाक या नीचा दिखाने के लिए हँसना अक्षम्य अपराध है। एक विचारक का मत है – **तीर तलवार के घाव भर जाते हैं।** परन्तु वाणी का छोड़ा व्यंग्य बाण सदैव मर्म स्थल को छेदता रहता है।

बुद्धि

मनुष्य और पशु में यही मुख्य भेद है कि मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धिमान् बनाया है। पशुओं को इतनी ही बुद्धि दी है जिससे वे अपना भोजन, वंशवृद्धि और यथाशक्ति अपनी सुरक्षा कर सकें। जहाँ पशुओं को अपनी रक्षा के लिये दाँत, सींग और नाखून दिये हैं वहाँ मनुष्य उनके सामने लाचार है। परन्तु अपने बुद्धि बल से उसने समस्त प्राणियों को अपने वश में कर लिया है। आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ने वाले विमान, समुद्र में जलयान और भूमि पर दौड़ने वाले विभिन्न वाहन सभी बुद्धि की देन है। बुद्धि हमें वंश परम्परा से मिलती है जिसकी वृद्धि होना सम्भव नहीं है। हाँ उचित खानपान, वातावरण और अभ्यास द्वारा इसकी कार्यशक्ति को पर्याप्त सीमा तक बढ़ाया जा सकता है।

बुद्धि विकास के उपाय

निम्न उपायों से बुद्धि की कार्यशक्ति वृद्धि होगी -

१. **सात्त्विक भोजन** – छान्दोग्योपनिषद् में कहा है -

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

(७/६)

सात्विक भोजन से सत्त्व (बुद्धि) निर्मल होती हे। बुद्धि के ठीक रहने पर स्मरणशक्ति स्थिर हो जाती है। कोई बात विस्मृत नहीं होती। स्मृति के स्थिर होने पर

www.thearyasamaj.org

अज्ञान की सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। सात्विक आहार कौन सा है इसका वर्णन गीता में किया है –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः।।
१७/८

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रस युक्त, स्निग्ध और शरीर को स्थिरता प्रदान करने वाले अन्न, दाल, फल, मेवा, मीठे पदार्थ, घृत, दूध, शाक सब्जी आदि सात्विक श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ ओषधियाँ भी बुद्धिवर्धक हैं –

१. शंखपुष्पी का चूर्ण २-३ ग्राम, काली मिर्च मिलाकर दूध के साथ सेवन करें।

२. शंखपुष्पी चूर्ण १ ग्राम, ब्राह्मी का चूर्ण १ ग्राम काली मिर्च ३ नग दूध के साथ सेवन करें अथवा इनका शर्बत बना कर लें।

३. गिलोय का स्वरस या मुलहटी का चूर्ण दूध के साथ लेना चाहिये।

४. बादाम के बीज १०, काली मिर्च ५ सायंकाल जल में भिगो दें। प्रातः छिलका उतार कर सिलबट्टे या मिक्सी में घोटकर जल मिला कपड़े से छान मीठा मिला कर पीयें। सर्दी की ऋतु में दूध के साथ ले सकते हैं। अथवा जो बादाम की लुगदी बने उसे २० ग्राम घी में छोंक लगा कर चाट लें और ऊपर से गर्म करके ठण्डा किया दूध पीयें।

५. आयुर्वैदिक औषध सारस्वत चूर्ण, ब्राह्म-रसायन, स्मृतिसागर रस भी बुद्धिवर्धक है।

२. **संयम** –

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
(गीता २/४८)

जब यह पुरुष कछुवे की भाँति इन्द्रियों को विषयों से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थित है यह समझना चाहिये। जब मन और बुद्धि विषयों की ओर आकर्षित न होकर स्थिर हो जाती है तो फिर इसे इच्छित लक्ष्य की ओर लगाया जा सकता है। जैसे चमड़े के पात्र में यदि कोई छिद्र हो जाये तो उसमें भरा हुआ तरल पदार्थ बून्द-बून्द करके स्रवित हो जाता है वैसे ही जो व्यक्ति एक भी इन्द्रिय का दास है उसकी मतिभ्रष्ट हो जाती है।

३. **प्राणायाम**–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। (योग दर्शन)

प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धि पर छाया तमोगुण का आवरण क्षीण हो ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। विद्यार्थियों के लिये बाह्य प्राणायाम और अनुलोम-विलोम एवं नाड़ीशुद्धि उपयुक्त हैं।

४. **प्रातः जागरण** – अंग्रेजी की एक कहावत है – ' ' प्रातःकाल शीघ्र उठ कर जो व्यायाम करता है वह बलवान्, धर्नाजन करने वाला धनवान् और पढ़ने वाला बुद्धिमान् बन जाता है। जो विद्यार्थी प्रातः ब्रह्म मुहूर्त्त में सोता रहता है, उगते सूर्य की किरणें उसके बल, पराक्रम और बुद्धि का हरण कर लेती हैं। इसलिये सायंकाल को जल्दी सोना और प्रातःकाल ब्रह्म मुर्हूत में उठने का नियम बना लेना चाहिये।

५. **सत्संग, स्वाध्याय**– बुद्धि का निर्माण वंशानुगत और वातावरण दोनों से होता है। अच्छे लोगों की संगति में रहने से सद्बुद्धि और दुर्जनों के संग से बुद्धि मलिन हो जाती है। सत्संगति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है। इसी भाँति अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से भी बुद्धि का विकास होता है।

६. **प्रसन्नता** – मन के प्रसन्न रहने पर सर्व दुःखों की निवृत्ति और प्रसन्न चित्त वाले की बुद्धि स्थिर हो

www.thearyasamaj.org

जाती है।

७. **जप**– ओंकार या गायत्री का जप ध्यान को भृकुटि में जमाकर करने से भी बुद्धि तीव्र होती है। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नानादि के पश्चात् गायत्री का जप किया जा सकता है। सुश्रुत संहिता में बुद्धि की धारण करने की क्षमता को बढ़ाने वाले निम्न उपाय बताये हैं –

सतताध्ययनं वादः परतन्त्रावलोकनम्।
तद्विद्याचार्यसेवा च बुद्धि मेधाकरो गणः।।

विषय से सम्बन्धित ग्रन्थों का नित्य अध्ययन, चर्चा, विषय से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे सहायक ग्रन्थों का अवलोकन एवं विषय के जानने वाले विद्वानों की संगति करने से बुद्धि की धारण करने वाली शक्ति बढ़ जाती है।

स्मृति

जो बात पहले सीखी जा चुकी है उसे स्मरण रखने का नाम स्मृति है। इसके तीन अंग हैं।

१. **सीखना** (Learning) किसी बात को भली भाँति याद रखने के लिये उसे पहले ठीक प्रकार से सीखना या समझ लेना आधी से अधिक लड़ाई जीत लेता है।

२. **धारण करना** (Retention) जो हम सीखते हैं वह कुछ समय के पश्चात् अचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में संचित हो जाता है। कोई बात कितने समय तक चित्त में संचित रह सकती है यह व्यक्ति की धारणात्मक शक्ति (धृति) पर निर्भर करता है। धारणा शक्ति को बढ़ाने के लिये निम्न सूत्र उपयोगी हैं –

- अच्छा स्वास्थ्य
- अच्छी प्रकार सीखना
- मन को एकाग्र कर रुचि से सीखना
- याद रखो – कठिन विषय की अपेक्षा सरल एवं रोचक बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।

३. **पुनः स्मरण** (Recall) आपने एक विषय को पूरा याद किया है परन्तु परीक्षा के समय उसे भूल गये हैं तो सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है। इसलिये सीखे हुये विषय को पुनः स्मृति पथ पर लाने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसके लिये निम्न सूत्र उपयोगी हैं –

(क) आदत डालना – किसी विचार को बार-बार दोहराने से वह आदत में परिणत हो जाता है। जैसे आपने बच्चों को पहाड़े और गिनती बोलते देखा होगा। बचपन की यह मेहनत सारा जीवन काम आती है।

(ख) निरन्तरता – जिन विषयों का विशेष महत्व है उन्हें निरन्तर दोहराते रहने से कालान्तर में उसकी गहरी छाप पड़ जाती है। किसी भी विषय के मुख्य बिन्दुओं को चिन्हित कर उन्हें स्मरण करना और उनकी पुनरावृत्ति निरन्तर करते रहना चाहिये।

(ग) परस्पर सम्बन्ध – विषय को स्मरण रखने के लिये एक घटना या बिन्दु का दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेने से स्मरण रखना सरल हो जायेगा।

इनके अतिरिक्त निम्न बातें भी सहायक हैं –

रुचि का होना, एकाग्रता, शरीर एवं मन का थकान रहित होना, आत्मविश्वास या दृढ़ निश्चय, सकारात्मक चिन्तन, संवेगों (काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह) का नियन्त्रण, पूर्ण विश्राम, गाढ़ निद्रा, समुचित व्यायाम, संतुलित भोजन

परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के सूत्र –१. तीव्र इच्छा, १. कठोर परिश्रम, ३. आज के काम को कल पर नहीं छोड़ना, ४. चर्चा, ५. लिखना, ६. महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित कर उन्हें स्मरण रखना, ७. दूसरों को पढ़ाना, ८. स्पर्धा, ९. भाषा का अधिकार, १०. सुलेख।

www.thearyasamaj.org

स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये योगाभ्यास - आसन-शीर्षासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, वृक्षासन, पादांगुष्ठासन।

ध्यान के आसन - सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन, योगमुद्रा - सामान्य रूप में सभी आसन नाड़ी तन्त्र को शान्त रखने में सहायक हैं। जब मस्तिष्क शान्त रहेगा तो स्मरण शक्ति में वृद्धि होगी ही।

क्रिया - जलनेति, कपाल भाति, त्राटक, नासाग्र दृष्टि, भ्रूमध्यदृष्टि।

मुद्रा - ज्ञानमुद्रा - अंगूठे और तर्जनी के अग्र भाग को मिलाने से धन और ऋण विद्युतप्रवाह मिल कर रक्त को मस्तिष्क की ओर अधिक मात्रा में संचालित करता है तथा मस्तिष्क को ऑक्सीजन की पर्याप्त आपूर्ति होती है। स्मरण रहे ग्लूकोज और ऑक्सीजन का तृतीय भाग केवल मस्तिष्क को ही चाहिये। ज्ञान मुद्रा, शीर्षासन, सर्वाङ्गासन इसमें सहायक हैं।

ध्यान - नासिकाग्र या भ्रूमध्य में मन को एकाग्र कर श्वास-प्रश्वास का निरीक्षण करना, गायत्री मन्त्र या ओ३म् का जप अथवा भृकुटि में ज्योति दर्शन हो जाता है। योगी ही अपनी समग्र बुद्धि का प्रयोग कर आत्मा-परमात्मा और प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है।

आदर्श जीवन

आदर्श संस्कृत भाषा में दर्पण का वाचक है। जैसे दर्पण में देख कर हम अपना मुख, बाल, वस्त्रादि को संवारते हैं वैसे ही जिस महापुरुष के जीवन चरित्र से हम अपने चरित्र का निर्माण अथवा किसी दुर्गुण, दुर्व्यसन कोदूर करते हैं वह हमारे लिये आदर्श बन जाता है। जिसके जीवन के सब पहलुओं को देखने पर जो एक जैसा दिखाई दे, जिसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन, कथनी और करनी एक जैसी हो, उसे आदर्श पुरुष माना जा सकता है।

रामायण एवं महाभारत हमारे देश की अनुपम निधि है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी का आदर्श आज भी कोटि-कोटि मनुष्यों को प्रेरित कर रहा है। कल राजतिलक होने वाला है, यह जानकर भी राम के मन में अहंकार नहीं है, वे समुद्र के समान गम्भीर बने रहते हैं। अगले दिन चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा मिलती है तब भी वे शान्त, धीर और प्रसन्नमुख हैं। "**सम्पत्तौ व विपत्तौ च महतामेकरूपता**" यह उक्ति उन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। संसार में ऐसा उदाहरण ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। भरत ननिहाल से आकर राम को वापस अयोध्या में लाने के लिए सेना लेकर वन में जाते हैं। दोनों की भेंट होने पर भरत राम से अयोध्या का राजसिंहासन सँभालने का आग्रह करते हैं और स्वयं वन में रहने के लिए कृतसंकल्प हैं।

राजतिलक की गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम और उधर भरत दोनों ने ठोकर मारी।।

अन्य जातियों का इतिहास पढ़ जाइए, उनका सारा इतिहास सत्ता-प्राप्ति के लिए भाई, पिता, पुत्र के रक्त से रंजित मिलेगा।संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुष्कर है, जहाँ चौदह वर्ष तक खड़ावों ने राज्य किया हो। महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने रामायण लिखकर अपनी लेखनी को अमर कर लिया है और यह स्वाभाविक ही है -

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

रावण द्वारा सीता का अपहरण किये जाने पर सीता द्वारा विमान से गिराये गये आभूषणों को सुग्रीव द्वारा दिखलाने पर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहते हैं- 'भाई लक्ष्मण! मैं शोक संतप्त होने के कारण इन आभूषणों की ठीक पहचान करने में असमर्थ हूँ, आप इन्हें पहचानें।' यह सुनकर लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया वह आर्यवीरों के चरित्र की पराकाष्ठा है -

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

www.thearyasamaj.org

"हे भाई राम! मैं (केयूर) बाजू के आभूषण एवं कानों के कुण्डलों को नहीं पहचान सकता, माता सीता के पैरों के आभूषण (नूपुर) को ही मैं जानता हूँ, क्योंकि मैं प्रतिदिन प्रात: उनके पैरों में झुककर प्रणाम किया करता था।" वीर लक्ष्मण का यह आदर्श अद्वितीय है। इसी अखण्ड ब्रह्मचर्य के बल से उन्होंने मेघनाद जैसे शूरवीर योद्धा पर विजय पायी थी।

योगिराज श्रीकृष्ण से सभी देशवासी परिचित हैं। उन्होंने युवावस्था के प्रारम्भ में अपने माता-पिता को बन्दी बनानेवाले अत्याचारी और क्रूर मामा कंस को मार गिराया। राजसिंहासन पर उनके पिता उग्रसेन को बिठाया। पाण्डवों को फिर से उनका राज्य लौटा देने के लिए स्वयं दूत बनकर दुर्योधन के दरबार में गये। दुर्योधन को बहुविधि समझाया, परन्तु उसने बिना युद्ध के सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया और श्रीकृष्ण जी को ही बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचा। परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। युद्धभूमि में अर्जुन द्वारा भीरुता दिखाने पर उन्होंने गीता का अमर उपदेश दिया। आज संसार की सभी समृद्ध भाषाओं में गीता का अनुवाद हो चुका है। श्रीकृष्णजी की रणनीति एवं राजनैतिक कौशल से ही पाण्डवों की विजय हुई। अपने समय में वे योग, राजनीति एवं बल में सर्वाग्रणी थे।

राजनीति के अद्वितीय विद्वान् महात्मा चाणक्य का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने अपने बुद्धिबल से अन्यायी राज नन्द को मगध के राजसिंहासन से उतारकर चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठापित किया। चन्द्रगुप्त के समय भारतवर्ष की सीमाएँ काबुल-कन्धार तक थीं। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापति सैल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की, परन्तु वह पराजित हुआ और उसने चन्द्रगुप्त से सन्धि करके अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी उसके साथ कर दिया तथा दहेज के रूप में अपने राज्य का कुछ भाग भी देकर गया। यह सब चाणक्य की बुद्धि एवं चन्द्रगुप्त के शौर्य का ही चमत्कार था। उनकी अनुपम कृति 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' आज भी राजनीतिज्ञों का मार्गदर्शन करती है।

महाराणा प्रताप का नाम यहाँ के बच्चे-बच्चे को याद है। उनके दादा महाराणा संग्राम सिंह के शरीर पर अस्त्र-शस्त्रों के अस्सी घाव थे। युद्ध में उनकी एक आँख तथा एक भुजा भी जा चुकी थी फिर भी मातृभूमि की रक्षा के लिए विदेशी आक्रान्ता बाबर का बहादुरी से मुकाबला किया। जिस समय अन्य राजपूत राजाओं ने अकबर को अपनी लड़कियाँ देकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, उस समय भारत माँ का यह वीर सपूत, सिसौदिया वंश की गौरव-पताका को उन्नत किये हुए अकबर से लोहा लेता रहा। जंगलों की खाक छानते हुए घास-फूँस की रोटियाँ खानी स्वीकार कीं, परन्तु मेवाड़ का मस्तक नीचा न होने दिया। प्रताप का नाम सुनकर आज भी आर्य सन्तान का सीना गर्वोन्नत हो जाता है। जिस समय यवनों के त्रास से भारत भूमि संत्रस्त होकर 'त्राहि माम्! त्राहि माम्!!' कर रही थी, चारों ओर हिन्दुओं के मन्दिरों को भूमिसात् करके उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई जा रही थीं, माता-बहिनों की लाज लूटी जा रही थी, चोटी और यज्ञोपवीत उतारकर बलात् इस्लाम धर्म अपनाने को बाध्य किया जा रहा था, उस समय अत्याचार की प्रबल आँधी के सामने चट्टान बनकर उसका विनाश करने के लिए वीर शिवाजी ने संग्राम का बिगुल बजाया। गौ, ब्राह्मण व आर्य-संस्कृति की फिर से रक्षा हुई। मन्दिरों में शंख-ध्वनि और वेदमन्त्रों का गान पुन: गूँजने लगा।

वीर बालक हकीकत का बलिदान कौन भुला सकता है जिसने बाल्यावस्था में धर्म रक्षार्थ सिर कटवाना मंजूर किया, परन्तु चोटी और जनेऊ को त्यागकर मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। पिता भागमल और माता कौराँ देवी का वह इकलौता पुत्र धर्म की रक्षार्थ हँसते-हँसते बलिदान हो गया। आज भी उसकी स्मृति में प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी का मेला लगता हे।

www.thearyasamaj.org

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही नामो-निशाँ होगा।

अनुशासन

किसी भी संस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए निश्चित किये गये नियमों के पालन करने को अनुशासन कहते हैं। अंग्रेज़ी भाषा में इसका अनुवाद (Discipline) होता है। Disciple शिष्य को कहते हैं। शिष्यत्व की भावना, आज्ञा-पालन या नियम-निर्देश का परिपालन करना ही अनुशासन कहलाता है।

अनुशासन से पहले शासन का होना अनिवार्य है। निश्चित विधि-विधान, नियम, आज्ञा, आचार संहिता एंव दण्ड का नाम शासन है। आज्ञा एवं नियम का परस्पर सम्बन्ध है। आज्ञा का विशेषरूप मे स्वीकार करने पर उसे पालन करने के लिए नियम, कानून और व्यवस्था का होना आवश्यक है, अन्यथा आज्ञा का पालन नहीं हो सकेगा।

अनुशासन बाह्य न होकर स्वैच्छिक और आभ्यन्तर होना चाहिए। बलात् लादी गई कोई भी पद्धति कालान्तर में विद्रोह का रूप धारण कर लेती हे। किसी कारण से सभी लोग यदि सहमत न हो सके तो बहुमत का समर्थन आवश्यक है। जिनसे बलात् अनुशासन का पालन करवाना पड़े उन्हें भी युक्तिपूर्व समझाने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे उनका हृदय परिवर्तन हो सके और वे समर्थन न सही, विरोध तो न कर सकें। इस उद्देश्य से साम, दाम, भेद और दण्ड-नीति का समयानुसार प्रयोग करना महत्वपूर्ण है।

अनुशासन ही व्यक्ति के व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र को महान् बनाता है। बाह्य संसार एवं आभ्यन्तर जगत् में हम देखते हैं कि सर्वत्र अनुशासन का साम्राज्य है। सृष्टि का संचालन नियमपूर्वक हो रहा है। बीजों के अनुसार वृक्षों का अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होकर फल लगना और पुन: उन फलों से वैसे ही बीजों की उत्पत्ति इन सब कार्यो में नियम, क्रम देखा जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, उपग्रह एवं ब्रह्माण्ड के अन्य लोक-लोकान्तर अपनी नियत कक्षाओं में गति कर रहे हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित छोटे विमानों की आकाश में परस्पर टक्कर हो जाती है, परन्तु आकाशीय पिण्डों को टकराते नहीं देखा गया।

मानव शरीर में भी विभिन्न तन्त्र परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी बनकर कार्य करते हैं। शरीर की प्रत्येक कोशिका अपना कार्य जानती है। किसी कारणवश जब ये कोशिकाएँ अपना नियम तोड़ देती हैं तो उस समय विकार प्रकट हो जाते हैं। कैंसर का रोग मुख्यत: शरीर की विभिन्न कोशिकाओं द्वारा विद्रोही होकर अनावश्यक रूप से बढ़ जाना ही है।

यदि जंगलों में जाकर पशु, पक्षी एवं कीट-पतंगों का अध्ययन करें तो विदित होगा कि जंगल का प्रत्येक प्राणी अपनी सुरक्षा के लिए समूह द्वारा निर्धारित संकेतों का पालन करता है। हाथी, हिरण, बन्दर, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसका विकास सम्भव नहीं है। सामाजिक उन्नति के लिए समाज द्वारा निर्दिष्ट नियम और विधान का पालन करना बहुत आवश्यक है। बच्चा बाल्यकाल में माता-पिता की प्रत्येक बात का अनुकरण तथा पालन करता है। विद्यालय में गुरु उसके बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अनेक नियमों का पालन करवाता है। विद्या-समाप्ति के अनन्तर गृहस्थ जीवन के नियम, जो कि समाज एवं राजाज्ञा द्वारा बनाये गये हैं, पालन करने पड़ते हैं। राज्य नियमों का पालन करना भी सभी के लिए अनिवार्य हैं इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन में सर्वत्र अनुशासन का ही बोलबाला है।

अनुशासन परीक्षा की वह भट्टी है जिसमें तपकर सोना कुन्दन और पीतल काला हो जाता है। इसके लिए तप, संयम, आदर्श एवं कर्त्तव्य पालन का अभ्यास होना

www.thearyasamaj.org

चाहिए। अनुशासन पालन वही करा सकता है जो स्वयं अनुशासित हो। इसका अभ्यास बचपन से करना आवश्यक है। माता-पिता की प्रत्येक हितकारी बात का मानने वाला बालक ही आगे जाकर नेतृत्व संभालता है। अनुशासित बच्चे की शक्ति व्यर्थ कार्यों में न लगकर रचनात्मक कार्यों में लगती है। विद्यालय में अध्यापक को प्रतिदिन अभिवादन, दिये पाठ का स्मरण, अन्य नियमों कापालन उसे सभी गुरुजनों का प्रिय बना देता है।

अनुशासन की चार विशेषताएँ -

१. मुस्कराते हुए आज्ञा पालन करना।

२. नि:संकोच कठोर परिश्रम करना।

३. समय का पालन करना।

४. झूठ न बोलना, बहाने न बनाना।

चरित्र-निर्माण

संसार में व्यक्ति का चरित्र सबसे बड़ा है। धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, तो कुछ गया परन्तु यदि चरित्र गया तो समझो सब-कुछ गया।

"अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।"

-महाभारत

अर्थात् जिस व्यक्ति के पास चरित्ररूपी रत्न है उसके आगे समस्त संसार नतमस्तक होता है। निर्धन धनवान् से डरता है, दुर्बल बलवान् से डरता है, मूर्ख विद्वान् से डरता है, परन्तु चरित्रवान् से ये सब डरते हैं। सांसारिक चमक-दमक, मान-सम्मान उसे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकते। चरित्रवान् व्यक्ति चट्टान की भाँति प्रलोभनों के प्रबल झंझावात के सामने अडिग रहता है। वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने ऐसे उज्ज्वल नरपुंगव को जन्म दिया है, जिनके दर्शन मात्र से ही लोग अपना अहोभाग्य समझते हैं। उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।

चरित्र मानव-जीवन का दर्पण है। चरित्र-व्यक्ति की आदतों (कार्यों) का समूह है। व्यक्ति प्रतिदिन जो कार्य करता है उसका संस्कार उसके मानस पर पड़ता है। ये संस्कार सुदृढ़ होकर स्वभाव (आदत) में परिणत हो जाते हैं। ये आदतें ही चरित्र कहलाती हैं।

चरित्र-निर्माण के लिए केवल बाहर की रूप-रेखा पर ही विचार करना पर्याप्त नहीं है। बाहर का चरित्र 'व्यवहार' कहलाता है। व्यवहार का व्यक्तिगत रूप 'आचार' है और आचार का मौलिक रूप 'विचार' है।

मनुष्य के जीवन में इससे अधिक सत्य और कोई बात नहीं है कि हम जैसा बनने का विचार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। **'क्रतुमयः पुरुषः'** (उपनिषद्), अर्थात् पुरुष अपने संकल्पों का बना हुआ होता है। उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक होता है, अर्थात् कार्य करने से पूर्व उसके मन में उस कार्य को करने का विचार (संकल्प) उत्पन्न होता है। वही संकल्प आगे जाकर कार्यरूप में बदल जाता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि चरित्र-निर्माण में विचार ही मूल कारण है।

चरित्र वह अनमोल हीरा है, जिसका जन्म माता की कोख से होता है। हीरे की उत्पत्ति सर्वत्र नहीं होती, इसके लिए विशिष्ट परिस्थितियों का होना आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार धार्मिक एवं विदुषी माता बालक के गर्भ में आते ही संयम, सदाचार, आरोग्य, समुचित भोजन एवं सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करे, क्योंकि उसकी अमिट छाप बालक पर पड़ती है। जन्म के बाद पाँच वर्ष तक माँ बालक को शुद्ध उच्चारण, धार्मिक शिक्षा, सदाचार, संयम, शूरवीरता की शिक्षा देकर सभी दुर्गुणों से बचाये जिससे कि उस सुकोमल बालक के अन्त:करण पर इन सद्गुणों की अमिट छाप पड़ जाए, तभी भविष्य में वह संसार के आघातों को सहन करने में समर्थ हो सकता है।

www.thearyasamaj.org

माता के पश्चात् पिता बालक का चरित्र-निर्माण करने का उत्तरदायित्व सँभाले। बालक को दिनचर्या, कर्त्तव्यकर्म, स्वास्थ रक्षा, शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य के लाभ इत्यादि विविध उपदेश पिता को देने उचित हैं।

आठ वर्ष के पश्चात् माता-पिता इस अमूल्य हीरे को, जो यद्यपि बाहर-भीतर पूर्णरूप से हीरा है, परन्तु अस्पष्ट आकृतिवाला होने से अपनी दीप्ति से प्रदीप्त नहीं हो रहा है, गुरु को समर्पित कर दें। गुरु के गर्भ में इसका पुनः निर्माण होता है। इस बार उसे पहले से और सुदृढ़ बनाकर यम-नियमों के शाण-यन्त्र पर घिसाया जाता है। यदि कहीं कमी रह गई हो तो काट-छाँटकर उसे दूर किया जाता है। विद्या, योग एवं पुरुषार्थ की भट्टी में तपाया जाकर अब वह देदीप्यमान होकर अपनी ज्योत्सना से लोगों को चकाचौंध करने लगता है। धर्म, संयम व सदाचार की पालिश करने के पश्चात् उसे पुनः माता-पिता एवं समाज को वापस दे दिया जाता है। गुरु के यहाँ निर्मित इस चरित्र धन के धनी, अनुपम रत्न को सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या देवता भी देखने आते हैं।

तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।

-अथर्ववेद

यह आर्यावर्त देश प्रारम्भ से ही चरित्र-धन का धनी रहा है। यहाँ गुरुजन डिण्डिमघोष से यह उद्घोष करते थे - "**चरित्रांस्ते शुन्धामि**" (यजुर्वेद) - हे बालक! मैं तेरे समस्त आचार, विचार एवं व्यवहारों को शुद्ध करता हूँ। यह बात वही कह सकता है जो स्वयं भी चरित्र का धनी, आचार-विचार से शुद्ध और परोपकारी हो। इन्हीं श्रेष्ठ गुरु, आचार्य एवं विद्वानों के पद-पंजों में आकर विद्या ग्रहण करने तथा चरित्र की शिक्षा लेने के लिए मनु महाराज कहते हैं -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

- मनुस्मृति

अर्थात् समस्त भूमण्डल के लोग इस आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण, विद्वान्, गुरु, आचार्य इत्यादि के चरणों में बैठकर चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें। कभी तक्षशिला और नालन्दा जैसे बहुत बड़े-बड़े विश्वविद्यालय थे, जहाँ सहस्त्रों विद्यार्थी देश-विदेश से आकर विद्या पढ़ते थे। इसी ज्ञान-विज्ञान एवं चरित्र-बल के कारण महाभारत तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। यहाँ जन्म लेने के लिए मनुष्य तो क्या देवता (विद्वान्) भी लालायित रहते थे।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि चरित्र निर्माण का मूल 'विचार' है। विचार शुद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि परमात्मा को सदैव अपने हृदय में विराजमान जानकर उसका चिन्तन करते रहना चाहिए। परमात्मा हमारे मन की सब गतिविधियों को जानता है। वह सर्वत्र व्यापक है। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ वह विराजमान न हो, अतः सदैव दुर्विचारों का परित्याग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि व्यक्ति के अच्छे या बुरे विचार आकाश में फैलकर पुनः वापस आते हैं। जैसे ध्वनि लौटती है, वैसे ही विचारकर्त्ता के अच्छे विचार वातावरण से अन्य शुभ विचारों को साथ लाते हैं, इसी प्रकार कुविचार दुगुने वेग से आक्रमण करते हैं, अतः यथाशक्ति शुभ संकल्प ही करने चाहिएँ। विशेषतः सायंकाल शैय्या पर जाकर अच्छे विचारों का चिन्तन करते हुए सोना चाहिए।

विचारों का व्यक्तिगत रूप में पालन करना आचार कहलाता है। योग के पाँच नियम - **शौच** - अर्थात् बाह्य व आभ्यन्तर शुद्धि - मन में पवित्र विचार, स्नान, शुद्ध वस्त्र पहनना। **सन्तोष** - किये हुए पुरुषार्थ के फल से सन्तुष्ट रहना। **तप** - विद्या और धर्मवृद्धि के लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान इत्यादि की चिन्ता न करके निरन्तर आगे बढ़ते रहना। **स्वाध्याय** -

www.thearyasamaj.org

आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ना। **ईश्वरप्रणिधान** - सर्वस्व ईश्वरार्पण करना, ये वैयक्तिक चरित्र के उत्कृष्ट साधन हैं। इनके अतिरिक्त प्रातः जागरण, नियमित दिनचर्या, माता-पिता, गुरु एवं वृद्धजनों का सम्मान करना, परिश्रमपूर्वक विद्या पढ़ना, परीक्षा में नकल न करना, मधुर सम्भाषण, अच्छी संगति में बैठना, स्वस्थ मनोरंजन, महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ना, सादा जीवन और उच्च विचार आदि अन्य आवश्यक गुण हैं।

देशभक्ति

भारत भूमि का एक नाम देवभूमि है जिसमें जन्म लेने के लिये देवता भी लालायित रहते थे। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों को प्राप्त कराने वाली इस पुण्य धरा के ऋषि-महर्षि और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान और ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले ब्राह्मण गुरुओं के चरणारविन्द में बैठ कर देश-विदेश के लोग इसके विश्व विद्यालयों में हजारों विद्यार्थी विविध विद्याओं को पढ़ अपना अहोभाग्य समझते थे। उस समय भारत विश्व गुरु के पद पर आसीन था। समस्त ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का केन्द्र यह भारत देश ही था। सृष्टि के आदि में मानव मात्र को कर्त्तव्य पथ का बोध कराने वाली पवित्र वेदवाणी का ज्ञान चार ऋषियों के हृदय में यहीं पर हुआ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर श्रीकृष्ण जी की क्रीड़ास्थली भी यही भूमि है। अपने बल से शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले अर्जुन, भीम, हनुमान्, बालक भरत, राजनीति के चतुर खिलाड़ी, आचार्य चाणक्य, चन्द्रगुप्त, मेवाड़ के गौरव महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, रानी दुर्गावती, महारानी लक्ष्मीबाई, छत्रसाल बुन्देला, चन्द्रशेखरआजाद, वीर भगतसिंह, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आदि नररत्न इसी भारत भूमि की कोख से उत्पन्न हुये हैं जिनका नाम लेकर आज भी हम गर्वोन्नत हो जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि रचयिता ने अवकाश के क्षणों में खूब सोच-विचार कर भारत भूमि का निर्माण किया है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ब्रह्मदेश, बंगलादेश आदि सभी बृहत्तर भारत के अंग हैं। यदि हम प्राचीन भारत के मानचित्र को देखें तो इसकी आकृति सिंह जैसी दिखाई देती है। जिसके सिर पर हिमालय का मुकुट सुशोभित हो रहा है। दक्षिण में सागर चरण पखार रहा है। गंगा-यमुना प्रभृति नदियाँ माला के समान सुशोभित हो रही हैं। छः ऋतु, विभिन्न जलवायु और धन-धान्य से भरपूर यह भारतभूमि ऐसी है जिसके सामने स्वर्ग का राज्य भी फीका लगता है। कभी इसे सोने की चिड़िया के नाम से सारा विश्व जानता था।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जन्म देने वाली माता और जहाँ हमारा जन्म हुआ है वह मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। इस भूमि माता की धूली में हम घुटनों के बल चले। इसमें उत्पन्न अन्न जल से हमारा पोषण हुआ। भोजन, आवास तथा आजीविका के विविध साधन इसी से प्राप्त हो रहे हैं। इसकी सुगन्धित वायु में हम श्वास ले रहे हैं। अन्त समय में भी यही भूमि माता हमें अपनी गोद में आश्रय देती है तो फिर **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** वेद की इस वाणी को शिरोधार्य कर मातृभूमि का सम्मान क्यों न करें और इसकी रक्षा का व्रत क्यों न लें?

यहाँ एक प्रसंग का वर्णन करना उचित होगा। एक यात्री जा रहा था। उसने देखा कि एक वृक्ष में आग लगी हुई है और उस पर पक्षी निश्चिन्त बैठे हैं। उसने पक्षियों से कहा -

आग लगी इस वृक्ष पर जलने लगे सब पात।
तुम क्यों बैठे पंछियो जब पंख तुम्हारे साथ।।

यात्री की बात सुन पक्षियों ने उत्तर दिया -

फल खाये इस वृक्ष के गन्दे कीने पात।
धर्म हमारा है यहीं जलें इसी के साथ।।

www.thearyasamaj.org

सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र धर्म है। राष्ट्र भक्ति का उदाहरण जापान और इस्रायल से लिया जा सकता है। जापान के विद्यालयों में प्रत्येक बच्चे को यह पढ़ाया जाता है - जापान हमारा देश है। बौद्ध धर्म हमारा राष्ट्रीय धर्म है। महात्मा बुद्ध हमारे आराध्य हैं। जो हमारे धर्म का अपमान करेगा हम उसे दण्डित करेंगे। जो महात्मा बुद्ध का तिरस्कार करेगा हम उसे भी सजा देंगे परन्तु यदि स्वयं महात्मा बुद्ध सेना लेकर जापान पर आक्रमण करें तो हम उसका भी सिर काट लेंगे। आज यही पाठ भारत के प्रत्येक बच्चे को पढ़ाया जाना चाहिये जहाँ धर्म-सम्प्रदाय, भाषा एवं क्षेत्रवाद की संकीर्ण मनोभावना ने हमारे हृदयों को संकुचित कर दिया है। जिसके लिये महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी ने मुगलों से लोहा लिया। सन् १८५७ के क्रान्तिकारी वीरों ने माता के बन्धनों को काटने के लिये अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी। चन्द्रशेखर आजाद शहीद हुये। पं. रामप्रसाद बिस्मिल, वीर भगत सिंह प्रभृति वीरों ने हँसते हुये फाँसी का फन्दा चूमा। नेता जी सुभाष चन्द बोस ने आजाद हिन्द फौज सजाई। कितनों ने जेल काटी। अनेक अत्याचार सहे। कोल्हू चलाये। अत्याचार की यह लम्बी कहानी है। इन्हीं वीरों के गरम खून पर तैरती लन्दन से लालकिले तक यह स्वतन्त्रता की देवी आई है जिसके लिये हमें आजन्म इन देश भक्तों का कृतज्ञ रहना चाहिये।

देशभक्ति से अभिप्राय देश की भौगोलिक सीमा, यहाँ के नागरिक और अपनी संस्कृति का सम्मान करने से है। देश की भौगोलिक सीमा राष्ट्र का शरीर, राष्ट्र के जन प्राण और संस्कृति आत्मा है। यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि की सुरक्षा करना हमारा दायित्व है। राष्ट्रीय एकता के लिये यह आवश्यक है कि विविध जलवायु, भाषा, भेष और खानपान वाले लोगों से हम मिलें और भारत माता के विराट् स्वरूप का दर्शन करें।

जिस स्वतन्त्रता को हमारे पूर्वजों ने प्राणों की आहुति देकर प्राप्त किया उसको अक्षुण्ण बनाये रखना हम सबका कर्त्तव्य है। आज कुछ निहित स्वार्थ वाले लोग, धर्म, सम्प्रदाय भाषा के नाम से इसे बाँटना चाहते हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि राष्ट्र धर्म सर्वोपरि है और अन्य पूजा-पाठ की पद्धति वैयक्तिक है। सभी भारतीय भाषा अपनी हैं जिनका प्रादुर्भाव संस्कृत से हुआ है। सभी महापुरुष हमारे पूज्य हैं जिन्होंने हमें सन्मार्ग दिखलाया। इस देश में उत्पन्न सभी लोग भारतमाता के पुत्र हैं। यहाँ की नदियाँ, पर्वत, झील सरोवर, वन-उपवन सभी हमारी राष्ट्रीय धरोहर हैं। हमें पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु अपनी सांस्कृतिक मान्यता एवं परम्परा से विमुख हो जाना हमारे लिये आत्मघाती होगा। जो लोग यहाँ के अन्न-जल से पले हैं और सपने अरब, अमेरिका या चीन के देखते हैं उनकी देशभक्ति सन्देहास्पद है।

कोई देश सम्मान से तभी सिर ऊँचा रख सकता है जब वहाँ के युवक तप और दीक्षा को अपना आदर्श बनायें। भगवती वेदवाणी कहती है -

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा अभिसंनमन्तु।।

क्रान्तिदर्शी मनीषियों ने राष्ट्र को बलवान् और तेजस्वी बनाने के लिये तप और दीक्षा को प्राथमिकता दी। किसी अच्छे काम को करने में सुख-दु:ख, मान-अपमान, लाभ-हानि की ओर ध्यान न देते हुये उसे पूरा करना तप और जिस अच्छे कार्य का संकल्प लिया है उसे प्रारम्भ करना दीक्षा कही जाती है। जिस देश की युवाशक्ति तपस्वी और दीक्षित होगी वह देश निरन्तर प्रगति पथ पर आगे ही बढ़ता चला जायेगा।

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय - न्यास को दिया गया आपका पवित्र दान
धारा ८० जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

www.thearyasamaj.org

गुरुभक्त शिष्य आरुणि

जिसे अनुशासित किया जाये उसे शिष्य कहते हैं। प्राचीन समय की बात है। महर्षि आमोद धौम्य के आश्रम में पांचाल देश से आया एक ब्रह्मचारी भी अध्ययन कर रहा था जिसका नाम था आरुणि। अरुण उगते हुए सूर्य को कहते हैं। ओजस्वी मुखमण्डल, सुडौल शरीर, मन में विद्या प्राप्ति की लगन और गुरु की सेवा शुश्रूषादि उसके नाम को सार्थक कर रहे थे।

पहले गुरु शिष्य की परीक्षा लेकर ही उसे स्वीकार करते थे। जैसे ऊसर भूमि में बीज बोना फलदायक नहीं होता वैसे ही कुपात्र को दी गई विद्या फलित नहीं होती। जैसे अशुद्ध पात्र में अच्छी वस्तु रख दी जाये तो वह भी दूषित हो जाती है। उसी प्रकार अनधिकारी शिष्य गुरु द्वारा दी गई उत्तम विद्या, ज्ञान, विज्ञान को सुरक्षित नहीं रख सकता। यही कारण था कि सभी ब्रह्मचारियों को विद्या अध्ययन के अतिरिक्त आश्रम के सभी कार्य स्वयं करने पड़ते थे इससे उनमें तप और स्वावलम्बन के भाव जाग्रत हो भावी जीवन में किसी भी कठिनाई को सहन करने का साहस भी आ जाता था। गुरु और शिष्य एक बड़े परिवार की भाँति मिल कर रहते थे। दूर-दूर से विद्या प्राप्ति के लिये आये ब्रह्मचारी परस्पर छोटे-बड़े भाइयों के समान स्नेह के सूत्र में आबद्ध हो प्रेम से अध्ययन में दत्तचित्त रहते थे। गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली आदर्श थी जहाँ विद्यार्थी को शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक शिक्षा बिना किसी भेदभाव के सबको समान रूप में दी। जाती थी।

वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। चारों ओर काली घटायें घिर आयीं। बिजली की कड़क के साथ ही झमाझम वर्षा होने लगी। देखते ही देखते सारा क्षेत्र जलमग्न हो गया। सब ब्रह्मचारी वर्षा के आगमन का स्वागत करते हुये गुरुकुल के प्रांगण में निकल आये और खेलने लगे। इतने में ही आचार्य की दृष्टि खेतों की ओर गई। उन्होंने आरुणि को बुलाकर कहा – वत्स! कुदाल लेकर खेत में जाओ। कल ही हमने धान का आरोपण करा है। सभी मेड़ों को मजबूती से बान्धों, जिससे खेत का पानी निकल न जाये।

जो आज्ञा गुरुदेव! आरुणि ने कुदाल उठायी और खेतों की ओर चल पड़ा। अभी भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। सारा खेत लबालब भरा हुआ था। पानी मेड़ों को काटकर अनेक स्थानों पर बाहर की ओर बहा जा रहा था। आरुणि ने कुदाल हाथ में ली और अपने कार्य में लग गया। उसने शीघ्र ही बहुत सारे स्थानों से बहते पानी को ऊँची मेड़ बांधकर रोक दिया। अपने परिश्रम को सफल होता देख आरुणि ने चैन की साँस ली।

परन्तु एक स्थान कुछ नीचा होने के कारण पानी ने गहरा कटाव कर दिया जिसे पर्याप्त मिट्टी डालने पर भी रोका नहीं जा सका। अब क्या किया जाये? यदि मैं आश्रम से दूसरे ब्रह्मचारियों को बुलाकर लाता हूँ तब तक सारे खेत का पानी निकल जायेगा। कुछ समय इसी उधेड़-बुन में रहने के पश्चात् उसे एक विचार सूझा। क्यों न इस कटाव को पाटने के लिये मैं स्वयं मेड़ के साथ तिरछा लेटकर पानी के बहाव को रोक दूँ? दूसरे ही क्षण वह मेड़ के साथ लेट गया। उसका शरीर सुदृढ़ और स्थूल होने के कारण सचमुच में ही पानी का बहाव रुक गया। अपना उपाय सफल जान आरुणि की चिन्ता दूर हुई। यद्यपि सभी वस्त्रों के गीला हो जाने और वर्षा में भीगने से उसका शरीर थर-थर कांप रहा था परन्तु फिर

www.thearyasamaj.org

भी वह गुरु की आज्ञा पालन करने का संकल्प लिये अपने स्थान पर लेटा ही रहा।

वर्षा का वेग शान्त हुआ। सायंकालीन कार्य की घण्टी बजी। सभी ब्रह्मचारी एकत्र हो गये। संख्या किये जाने पर ज्ञात हुआ कि आरुणि उपस्थित नहीं है। कहाँ है आरुणि? आचार्य के पूछने पर साथियों ने बतलाया कि उसे तो आपने मध्याह्न में खेत में वर्षा के पानी को रोकने के लिये भेजा था, तभी से वह लौट कर नहीं आया है। अरे! अभी तक नहीं लौटा। चलो उसे ढूंढ कर लायें। आचार्य और शिष्यगण लम्बे डग भरते हुये खेत की ओर चल पड़े। सभी ने चारों ओर दृष्टि घुमाई। खेत पानी से लबालब भरा हुआ था परन्तु वहाँ आरुणि कहीं पर भी दिखाई नहीं दिया। आरुणि! आरुणि!! कहाँ हो तुम? आचार्य की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। वे खेत के चारों ओर चक्र लगाते हुये बार-बार उसका नाम लेकर पुकार रहे थे। इतने में एक नीचे स्थान पर पहुँचने पर धीमे से स्वर सुनाई दिया गुरुदेव! मैं यहाँ लेटा हुआ हूँ। शीत के कारण आरुणि का स्वर रुन्ध गया था। यह क्या? आरुणि उठो। अन्य साथियों ने उसे सहारा दिया और शीघ्रता से पानी के बहाव को रोक कर आचार्य ने पूछा - तुमने यह दु:साहस क्यों किया? यदि पानी नहीं रुका तो आश्रम में आकर दूसरे ब्रह्मचारियों को ले आते। क्षमा करें गुरुदेव! पानी का बहाव इतना तेज था कि जब तक मैं आश्रम में पहुंचता सारे खेत का पानी निकल जाता। मैंने और कोई उपाय न देख पानी को रोकने का यही उपाय जान ऐसा किया। मुझसे कुछ भूल हुई है तो क्षमा करें, उसने धीरे से उत्तर दिया।

अन्य ब्रह्मचारियों ने उसके शरीर को स्वच्छ किया और सूखे वस्त्र दिये तथा हाथ पैरों की मालिश की। जब वह कुछ स्वस्थ हुआ तो गुरु की ओर देखने लगा और बोला मेरे लिये क्या आज्ञा है?

आचार्य का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने उसके शिर पर हाथ रखते हुये कहा - आरुणि! तुमने इस दुस्साध्य कार्य को अपने शरीर की चिंता न करते हुये पूरा किया है इससे मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम्हें मेड़ का उद्दलन करके निकाला है अत: आज से तुम्हारा नाम उद्दालक आरुणि प्रसिद्ध होगा। तुम्हारी बुद्धि में बहुत शीघ्र ही वेद और धर्मशास्त्र प्रकाशित होंगे। मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।

गुरुदेव! मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। आपने मुझ अकिंचन पर अपनी कृपा दृष्टि करते हुये जो आशीर्वाद दिया है, उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आरुणि ने गुरु जी के चरण स्पर्श किये।

चलो आश्रम में चलते हैं, गुरुजी बोले। कालान्तर में यही आरुणि गुरुकृपा से वेदशास्त्रों का पारंगत विद्वान् होकर अपने देश को लौटा।

गुरु दक्षिणा

दयानन्द! मैं इस समय वयोवृद्ध होने के कारण पठन-पाठन के कार्य में असमर्थ हूँ। संन्यास की दीक्षा देने के पश्चात् स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने कहा। मेरे एक मित्र दण्डी स्वामी प्रज्ञाचश्रु मथुरा में रहते हैं। वे व्याकरण के सूर्य हैं। तुम उनके पास चले जाओ और व्याकरण को पढ़ने के पश्चात् वेदों की कुञ्जी तुम्हारे हाथ में आ जायेगी।

सांयकाल का समय। एक युवक ने प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द दण्डी की कुटिया के दरवाजे को खटखटाया। कौन है? भीतर से आवाज आई। यही तो मैं जानने आया हूँ - मैं कौन हूँ? गुरु विरजानन्द जी ने मन में विचार किया कि कोई होनहार विद्यार्थी पहली बार आया है। उसे अन्दर आने की अनुमति मिली। पादवन्दना के पश्चात् गुरुजी ने पूछा - दयानन्द : तुमने कौन-कौन से ग्रन्थ पढ़े हैं? गुरुदेव! मैंने कातन्त्र, सारस्वत आदि व्याकरण के ग्रन्थ पढ़े हैं जो मेरे साथ हैं। मैने यजुर्वेद भी कण्ठस्थ किया है।

www.thearyasamaj.org

जो कुछ तुमने पढ़ा है वह सब अनार्ष अर्थात् ऋषि-मुनियों द्वारा प्रमाणित नहीं हैं। पहले इन ग्रन्थों को यमुना में बहाकर आओ और जो कुछ अब तक पढ़ा है उसे विस्मृत कर दो। साथ ही मेरी कुछ शर्तें और हैं। मैं एक ही बार पढ़ाता हूँ, दूसरी बार नहीं। आप सन्यासी हैं अत: अपने भोजन और आवास की पहले व्यवस्था करके पढ़ने के लिये आ सकते हो। बहुत अच्छा गुरुदेव! दयानन्द यमुना तट पर गये और उन सभी अनार्ष ग्रन्थों को यमुना जल में प्रवाहित कर दिया। **आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।** गुरुजनों की आज्ञा का पालन बिना विचारे ही करना चाहिये।

स्वामी दयानन्द जी प्रतिदिन मनोयोग से अष्टाध्यायी पढ़ने लगे। वे गुरुजी के स्नानार्थ यमुना जल के बारह घड़े भर कर लाते और मध्य धारा से पीने का जल भी लाते थे तथा कुटिया की सफाई भी करते थे। एक दिन उन्होंने कूड़ा एक कोने में इकट्ठा कर दिया। विचार यह था कि अध्ययन के पश्चात् दूसरी बार कुटिया की सफाई भी करने के पश्चात् झाड़ू लगाकर उसे बाहर फेंक देंगे। परन्तु दैवयोग से विरजानन्द जी का पैर उस कूड़े पर पड़ गया। वे आग बबूला हो उठे। आज झाड़ू लगाने का पर्याय किसका है? उन्होंने उच्च स्वर से पूछा। शिष्यों ने कहा कि आज दयानन्द जी का पर्याय है। इधर आओ दयानन्द। दोनों हाथ जोड़े दयानन्द जी गुरु विरजानन्द जी के सामने खड़े हो गये। प्रज्ञाचक्षु ने आव देखा न ताव, अपनी लाठी का प्रहार दयानन्द के ऊपर कर दिया। प्रहार भुजा पर लगकर रक्त बहने लगा। दयानन्द जी ने उधर ध्यान न देते हुये क्षमा याचना की और कहा आगे से ऐसी गलती नहीं होगी।

रात्रि का समय। विरजानन्द जी की कुटिया का द्वार खटखटाया। कौन है? गुरुजी मैं आपका शिष्य दयान्द उपस्थित हुआ हूँ। बोलो किसलिये आये हो? दयानन्द जी ने चरणस्पर्श करते हुये कहा गुरुवर्य! मेरा शरीर ब्रह्मचर्यपालन के कारण वज्र के समान कठोर हो गया है। मुझे दण्डित करते हुये आपके हाथों को चोट पहुंची है, यह कहते हुये उन्होंने गुरुजी के हाथ-पैरों को धीरे से सहलाना प्रारम्भ कर दिया। शिष्य की विनम्रता देख विरजानन्द जी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने सान्त्वना देकर दयानन्द को वापिस भेज दिया।

एक दिन स्वामी दयानन्द जी किसी शब्द सिद्धि को भूल गये। वे साष्टांग दण्डवत् करके बोले – गुरुजी! कृपा करके इस सिद्धि को पुन: बतलाने का कष्ट करें मुझे इसकी विस्मृति हो गई है। नहीं! कदापि नहीं!! मैंने तुम्हें पहले ही कहा था कि केवल एक बार ही पढ़ाया जायेगा। यदि यह सिद्धि स्मरण नहीं हुई तो भले ही यमुना में डूब मरो, परन्तु मेरे पास नहीं आना। जो आज्ञा गुरुदेव! दयानन्द जी चरण स्पर्श कर चल पड़े और यमुना के किनारे इस संकल्प के साथ बैठ गये कि यदि इस शब्द की सिद्धि स्मृति में नहीं आई तो यमुना में कूद कर अपने जीवन को समाप्त कर दूँगा। वे आसन लगाकर ध्यान में बैठ गये। थोड़ी ही देर में मन एकाग्र हो गया और उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि कोई उस शब्द की सिद्धि को ज्यों का त्यों दोहरा रहा है। यह सत्य संकल्प की जीत थी। वे उसी समय दौड़ते हुये गुरुजी की कुटिया में पहुँचे और सारी घटना को सुनाते हुये उस शब्द की सिद्धि सुना दी।

एक दिन वे यमुना किनारे ध्यानावस्था में बैठे हुये थे कि एक महिला ने आकर श्रद्धाभाव से उनके चरणों में शीश झुका दिया। गीले बालों के स्पर्श से स्वामी जी की समाधि खुल गई और सामने हाथ जोड़े महिला को देखा। इसका प्राश्यचित्त उन्होंने तीन दिन उपवास और ईश्वर भक्ति द्वारा किया। चौथे दिन वे जब गुरुजी की कुटिया में पहुँचे तो उन्होंने तीन दिन अनुपस्थित रहने का कारण पूछा। स्वामी दयानन्द जी ने सारी घटना सुनाई जिसे सुन गुरु विरजानन्द जी ने उन्हें अपने सीने से लगा लिया और कहा अन्धे को लाठी मिल गई। उन्होंने प्रसन्न होकर और मनोयोग से दयानन्द जी को पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। गुरु का आशीर्वाद फलित हुआ। ढाई वर्ष में

www.thearyasamaj.org

ही स्वामी दयानन्द जी ने व्याकरण पूरा कर लिया। वेदों को जानने की कुञ्जी उनके हाथ लग चुकी थी।

आज समावर्तन का दिन है। विद्या समाप्ति के पश्चात् ब्रह्मचारी के माता-पिता आचार्य को इस दिन गुरु दक्षिणा प्रदान करते हैं। स्मरण रहे प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में निश्शुल्क शिक्षा दी जाती थी। अन्तिम दिन श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता था, गुरुजन उसे ही स्वीकार करते थे। सर्वस्व त्यागी दयानन्द के पास देने को था ही क्या? वे एक सेर भर लौंग लेकर कुटिया पर पहुंचे और गुरु विरजानन्द जी के उपकारों को स्मरण करते हुये लौंग भेंट कर साष्टांग दण्डवत् की और जाने की अनुमति मांगी।

दयानन्द! मेरे परिश्रम का फल क्या यही है? गुरुदेव! मुझ अकिंचन के पास और है ही क्या जो आपकी सेवा में समर्पित किया जा सके। हाँ मेरा तन और मन अपना है जिसे आप जहाँ चाहे सेवा में ले सकते हैं। विरजानन्द जी की आँखों से गंगा-यमुना उमड़ पड़ी। हृदय में चिरकाल से जिस ज्वाला को दबा रखा था, आज वह प्रज्वलित हो उठी। आवेग के शान्त हो जाने पर विरजानन्द जी कहने लगे - दयानन्द! तुम अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। तुम्हारे जैसा गुरुभक्त, संयमी और कुशाग्रबुद्धि छात्र अभी तक मेरे यहाँ नहीं आया। पुत्र! आज सारा देश अविद्या-अन्धकार से आच्छादित हो गया है। ऋषि-महर्षियों की शिक्षा प्रणाली विलुप्त हो चुकी है। देश दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। जन्म से जाति-पाति, बाल विवाह, ऊँच-नीच का भाव देश को जर्जरित किये हुये है। मैं तुमसे यही दक्षिणा चाहता हूँ कि अविद्या अन्धकार का निवारण कर सर्वत्र आर्ष शिक्षा का प्रचार करो और असत्य मार्ग से हटाकर लोगों को सत्य मार्ग दिखलाओ। पुराण एवं ढोंग-पाखण्ड मिटाकर वेदों का प्रकाश करो। इसीलिये मैंने अत्यन्त परिश्रम से तीन वर्ष में ही इतना ज्ञान दे दिया है कि तुम्हारे सामने कोई भी दिग्गज खड़ा नहीं रह सकेगा। मेरी यही अभिलाषा है।

गुरुदेव! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। दयानन्द का सारा जीवन आर्ष ग्रन्थों की स्थापना, सत्य का मण्डन, पाखण्ड का खण्डन और सदियों से दासता और कुरीतियों की बेड़ियों में जकड़ी हुई आर्यजाति को जगाने में ही लगेगा।

जाओ वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। परमात्मा तुम्हें शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करे।

स्वामी दयानन्द जी ने गुरु विरजानन्द जी की चरणधूलि को अपने मस्तक पर लगाया और गुरु को दी गई प्रतिज्ञा को साकार करने के लिये निकल पड़े।

गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों का बलिदान

बलिदान अन्याय, अत्याचार और असत्य के विरुद्ध अपने जीवन की आहुति देना है। बलिदान का स्थान बहुत उच्च है जिसे प्राप्त करना और उस पर अडिग रहना सरल कार्य नहीं है। बलिदान ऐसी मृत्यु है जो उसकी यश कीर्ति को अमर बना देती है। गुरु गोविन्द सिंह के चारों बच्चों का बलिदान इसी कोटि में आता है जिसे देख उनके मुख से निकल पड़ा -

इन पुत्रन के वास्ते वार दिये सुत चार।
चार गये तो क्या हुआ जीवित कई हजार।।

गुरु तेग बहादुर के पश्चात् उनके सुपुत्र गोविन्दराय गद्दी पर बैठे। जिन्होंने अपने पिता को शहादत का जाम पीने को प्रेरित किया, भला वे शान्ति के दूत कब तक बने रहते? उन्होंने सन्त के साथ सिपाही का बाना धारण किया और खालसा पन्थ की स्थापना कर अपना नाम गोविन्द सिंह रखा। उनके शिष्यों ने अत्याचारियों को नाकों चने चबा दिये। अत्याचारों की आन्धी का वेग मन्द हुआ। पंजाब के हिन्दुओं ने अपने घरों से एक-एक पुत्र को गुरु गोविन्द सिंह का शिष्य बनाकर इस यज्ञ में अपनी आहुति प्रदान की।

www.thearyasamaj.org

जब औरंगजेब को इस उठती आंधी की सूचना प्राप्त हुई तो उसने लाहौर तथा सरहिन्द के नवाबों को इस आंधी को शान्त करने की आज्ञा दी और अपनी सेना भिजवा दी। इस विशाल सेना ने आनन्दपुर को घेर लिया। थोड़ी सेना होते हुये भी सिख शूरवीरों ने मुगलों से डटकर लोहा लिया। यवन सेना ने किले में खाद्य सामग्री ले जाने के सारे मार्ग बन्द कर दिये। किले में रसद समाप्त हो गई। एक रात गुरु गोविन्द सिंह अवसर पाकर किले से सुरक्षित बच निकले और चमकोर पहुँच कर कच्ची गढ़ी में किला बन्दी कर ली। उनके साथ ४० सैनिक और दो पुत्र थे। उनके दो पुत्र जोरावर सिंह-फतहसिंह माता गुजरी के साथ बिछुड़ गये। मुगल सैनिकों ने उस गढ़ी को घेर लिया। दिनभर लड़ाई होती रही। जब सिख सैनिकों का गोला बारूद समाप्त हो गया तब उन्होंने गढ़ी से बाहर आकर लड़ने की आज्ञा मांगी। गुरुजी ने अपने १६ वर्षीय पुत्र अजीत सिंह के साथ पाँच सैनिक देकर आशीर्वाद दिया। भूखे सिंह की भाँति यह सिंह शावक अरिदल पर टूट पड़ा औरअपने साथियों सहित धर्मयुद्ध की बलिवेदी पर शहीद हो गया।

अपने बड़े भाई को युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ देख छोटे भाई जुझार सिंह ने रणभूमि में जाने की आज्ञा मांगी। पिता ने पुत्र को हृदय से लगा लिया और कहा - पुत्र! रणचण्डी तुम्हारा बलिदान मांग रही है। जाने से पहले जुझार सिंह बोला - बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी पिला दीजिए। गुरुजी बोले - तुम्हारे बड़े भाई के पास खून की नदी बह रही है, वहीं जाकर अपनी प्यास बुझाओ।

जुझारसिंह पिताजी की चरण रज माथे पर लगाकर पाँच सैनिकों के साथ शत्रु दल पर टूट पड़ा और वीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

गुरुजी के दोनों छोटे बच्चे जोरावर सिंह, फतहसिंह माता गुजरी सहित गंगु रसोइये के साथ उसके गांव खेड़ी निकल गये। भय अथवा प्रलोभनवश गंगु ने मोरिण्डे के थानेदार को गुरु पुत्रों के होने की सूचना दे दी। थानेदार ने गुरु पुत्रों को माता गुजरी सहित पकड़कर सरहिन्द के नवाब के सामने पेश कर दिया। नवाब ने उन्हें किले के बुर्ज में कैद कर लिया।

प्रातःकाल दोनों बच्चों को कचहरी में उपस्थित किया गया। नवाब इन सुकुमार बच्चों को देखकर विचलित हो गया और काजी-मुल्लाओं को कहा कि आप ही निर्णय करें इन्हें क्या दण्ड दिया जाये। मुल्लाओं ने कहा कि या तो ये दोनों मुसलमान बनना स्वीकार करें अन्यथा इन्हें दीवारों में चुनवा दिया जाये। दो दिन तक बच्चों को लालच और धमकियाँ दी गयी परन्तु इन दोनों सिंह शावकों ने अपना धर्म छोड़ना स्वीकर नहीं किया।

अगले दिन इन दोनों को दीवार में चुना जाने लगा। जब दीवार छोटे कुमार फतह सिंह की ग्रीवा तक पहुँच गई तो बड़े भाई की आँखों से अश्रु निकल पड़े। छोटे भाई ने बड़े भाई को कहा - हमारे दादा गुरु तेग बहादुर ने जैसे धर्म रक्षा के लिये बलिदान दिया वैसे ही हमें भी हँसते हुये बलिदान देना चाहिये। छोटे भाई की बात सुन कर जोरावर सिंह ने कहा भैया! मैं मरने से नहीं डरता। मुझे दुःख इस बात का है कि तुम इस संसार में मुझे से पीछे आये और पहले जा रहे हो जबकि मुझे पहले जाना चाहिये था। इस दृश्य को जिसने देखा उसका हृदय द्रवित हो गया। किसी कारण दीवार गिर गई जिसके आघात से ये दोनों सुकोमल बच्चे बेहोश हो गये।

२७ दिसम्बर १७०४ को इन्हें फिर कचहरी में उपस्थित किया और मुसलमान बनने का दबाव डाला परन्तु दोनों गुरु पुत्रों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया तब दो जल्लादों ने इन दोनों को घुटनों में दबाकर उनके गले में छुरी घोंप दी। माता गुजरी ने इस समाचार को सुन किले के बुर्ज में ही प्राण त्याग दिये। इन तीनों का अन्तिम संस्कार टोडरमल तथा अन्य नागरिकों ने पृथक् भूमि खरीद कर कर दिया।

गुरु गोविन्द सिंह ने जब यह समाचार सुना तब उन्होंने समीप के एक पौधे को तीर से उखाड़ते हुये कहा

www.thearyasamaj.org

कि इस जुल्मी हुकूमत की जड़ उखड़ी समझो। उनकी वाणी सत्य सिद्ध हुई। वीरवर बन्दा वैरागी ने गुरुपुत्रों की इस निर्मम हत्या का बदला सरहिन्द की ईट से ईट बजाकर नवाब तथा उसके सहयोगियों को मौत के घाट उतार कर लिया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

मर्यादा परिधि या सीमा को कहते हैं। जैसे किसी देश, राज्य या ग्राम, नगर की सीमा होती है और कोई व्यक्ति भूलवश या जानता हुआ उसका अतिक्रमण करता है तो वहाँ सैनिक उसे दोषी मान जेल में बन्द कर देते हैं वैसे ही वेद में सात मर्यादायें बतलाई हैं तद्यथा - ब्रह्महत्या, किसी विद्वान् पुरुष को मार देना, भ्रूण हत्या - गर्भपात करना या कराना जैसे आजकल कन्या को गर्भ में ही मार देने का पाप किया जाता है, चोरी करना, परस्त्रीगमन, मद्यपान या दूसरे प्रकार का कोई नशा करना, झूठ बोलना, किसी बुरे काम को जानबूझ कर बार-बार करना।

इनमें से यदि कोई मनुष्य एक मर्यादा का भी उल्लंघन करता है तो वह पापी होता है। जो कोई इनको नहीं छूता अर्थात् इनसे दूर ही रहता है उसका निवास परमेश्वर के निकट होता है। वह उसका प्रिय बन जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का जीवन एक ऐसा आदर्श है जिसमें वे पहले कही गई सभी मर्यादाओं का पालन करते दिखाई देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने अपने माता-पिता और गुरुजनों से इनको सीख कर अपने जीवन मे धारण किया हो। हनुमान् जी अशोक वाटिका में सीता के सामने श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं -

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्त्ता कारयिता च सः।।

बा.रा.सु. ३५/११

हे सीते! श्रीराम चारों वर्णो के रक्षक, लोक में धर्म की मर्यादाओं को बांधकर उनका पालन करने और कराने वाले वे स्वयं ही हैं।

सत्य प्रतिज्ञ राम-

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाय पर वचन न जाई।।

रघुवंशियों की यह परम्परा रही है कि वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहते हैं। वेद में कहा है - **अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः** अर्थात् पुत्र पिता के व्रतों का पालन करने वाला और माता के समान विचार वाला हो। उन्होंने अपने पिता दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये दो वर पूरे करने के लिये वन में जाना स्वीकार किया। भरत उन्हें लौटाने के लिये वन में गये तब उन्होंने कहा कि यदि मैं तुम्हारे कहने से अयोध्या लौटता हूँ तो फिर कौन पिता गर्व से यह कह सकेगा कि मेरा पुत्र मेरी बात मानता है। भरत के द्वारा अपनी माता कैकेयी की निन्दा करने पर भी वे यशस्विनी कैकेयी कहकर बोलते हैं।

धर्म के रक्षक राम - जब श्रीराम के वन को जाने का समाचार लक्ष्मण ने सुना तो वे श्रीराम के निकट जाकर कहने लगे कि हे भ्राता! जब तक इस समाचार को दूसरे लोग जान पायें उससे पहले ही आप राजसिंहासन पर बैठ जाइये। मैं धनुष बाण लेकर द्वार पर खड़ा हो जाता हूँ और देखता हूँ कि कौन आपको चुनौती देता है।

लक्ष्मण के आक्रोश वाले वचन सुनकर श्रीराम ने कहा लक्ष्मण! धर्म, अर्थ, काम ये तीनों धर्म के फल हैं। जिस कर्म में ये तीनों सम्मिलित न भी हों, परन्तु जिससे धर्म बनता हो वही कर्म करना चाहिये। धर्म को छोड़ कर जो केवल धन कमाने में लगा रहता है उससे लोग द्वेष करने लगते हैं। इसी भाँति काम अर्थात् भोगों को भोगने में ही लगे रहने वाले की प्रशंसा नहीं होती।

वैसे तो श्रीरामचन्द्र जी का जीवन सर्वत्र प्रशंसनीय है परन्तु उनके पाँच गुण अति विशिष्ट हैं जो उन्हें महामानव के सर्वोच्च पद पर बिठाने योग्य हैं -

www.thearyasamaj.org

१. **एक बाण** – श्रीरामचन्द्र जी का लक्ष्य अचूक था। वे एक बार ही बाण को धनुष पर धारण करते थे, दूसरी बार नहीं। आज भी किसी प्रभावशाली औषध को रामबाण कहा जाता है।

२. **एक दान** – श्रीराम एक बार ही याचक को इतना दान देते थे कि उसे दूसरी बार किसी से माँगने की आवश्यकता ही नहीं होती थी। वनवास जाते समय उन्होंने अपनी सारी वस्तुओं को ब्राह्मणों को दान कर दिया और एक ब्राह्मण को अपनी सारी गायें दान में दीं।

३. **शरणागत की रक्षा** – अपनी शरण में आये सुग्रीव को उसके भाई बाली को मार राज वापिस दिलाया और विभीषण को लंका के राज सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

४. **एक वचन** – **रामो द्विर्न भाषते** श्रीराम जो कहते उसे पूरा करते थे। उनमें सत्य प्रतिष्ठित था।

५. **पत्नीव्रत के पालक** – **रामचन्द्रः परान् दारान् मनसापि न वीक्षते** श्रीरामचन्द्र जी दूसरों की स्त्रियों का मन से भी स्मरण नहीं करते थे। उन्होंने शूर्पणखा का विवाह प्रस्ताव ठुकरा दिया। उनके द्वारा जब लंका के अनेक योद्धा मारे गये तब रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया। कुम्भकर्ण ने कहा कि हे रावण! तुम साम दाम द्वारा सीता को अपने वश में करो। कुम्भकर्ण के वचन सुनकर रावण ने कहा कि सीता मुझसे बात ही नहीं करती। कुम्भकर्ण ने कहा तुम रूप बदलने में बहुत चतुर हो। अतः राम का रूप धारण करके सीता के सामने जाओ। सज्जनों! रावण ने जो कुछ कहा वह अविस्मरणीय है। रावण कहने लगा हे कुम्भकर्ण ! **राम को रूप धर्‌यो जब मैं तब मात समान लगी पर नारी** मैं जब राम के रूप को धारण करने का विचार करता हूँ तो अपनी पत्नी मन्दोदरी को छोड़ समस्त संसार की स्त्रियां मुझे माता और बहिन के समान दिखलाई देती है।

पाठकवृन्द श्रीरामचन्द्र के मर्यादित जीवन का इससे बड़ा प्रमाण क्या दिया जा सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है –

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।।

योगेश्वर श्रीकृष्ण

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर श्रीकृष्ण आर्य संस्कृति के दो उज्ज्वल रत्न हैं जिनसे आर्य जाति आज भी प्रेरणा ले रही है। श्रीराम ने उत्तर से लेकर दक्षिण सागर तक आर्य साम्राज्य की स्थापना की और श्रीकृष्ण पश्चिम में स्थित द्वारका से मणिपुर तक अत्याचारी शासकों को धराशायी करते हुये पहुँचे।

योग का अर्थ उपाय, ध्यान, संगति और युक्ति अमरकोष में कहे हैं। श्रीकृष्ण जी जहाँ योगी थे वहाँ राजनीति के कुशल खिलाड़ी भी थे। इसीलिये इन्हें योग अर्थात् उपाय, युक्ति और नीति का स्वामी होने के कारण योगेश्वर कहा गया। गीता के अन्तिम श्लोक में कहा है–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनञ्जयः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

जहाँ श्रीकृष्ण जी के समान नीतिनिपुण और अर्जुन जैसे धनुर्धर योद्धा हों वहीं सर्वविध ऐश्वर्य और विजय की प्राप्ति होती है।

श्रीकृष्ण का जीवन उस पहाड़ी सरिता के समान है जो पत्थरों एवं चट्टानों को काटते हुये अपना मार्ग बनाती है। उनका बाल्यकाल संघर्षों में ही व्यतीत हुआ। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को राज सिंहासन से हटाकर स्वयं राज हथिया लिया और अपनी बहिन देवकी तथा कृष्ण के पिता वसुदेव को कारागार में डाल दिया। जब कृष्ण का जन्म हुआ तो उसे युक्ति से गोकुल पहुँचा दिया गया जहाँ बाबा नन्द और यशोदा ने उसका पालन–पोषण किया।

www.thearyasamaj.org

'होनहार विरवान के होत चिकने पात' बचपन में ही कृष्ण गोप बन्धुओं में लोकप्रिय हो गये। गाय चराते हुये कालिया नाग का दमन, पागल बैल वृषासुर और हयासुर का वध करने से वे जन-जन के प्रिय बन गये। इन दिनों गोकुल से ग्वालिनें दूध, दही, मक्खन मथुरा ले जाती थीं। कृष्ण ने गोकुल में यह घोषणा करवाई कि आगे से कोई भी व्यक्ति घृतादि को मथुरा न ले जाये। जिन्होंने इस आज्ञा का उल्लंघन किया उनकी मटकियाँ फोड़ दी गई तब कहीं जाकर गोकुल का घी दूध मथुरा जाना बन्द हुआ। क्योंकि दूध पर पहला अधिकार बच्चों का है। बिना घी दूध के युवक बलवान् कैसे बन सकते हैं। लोक में दूध बेचना-पूत बेचना जैसा समझा जाता था। कृष्ण की नीति सफल हुई। युवा वर्ग अखाड़ों में जाकर मल्लयुद्ध और अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास करने लगा। उनके खाने के लिये घी दूध की पर्याप्त व्यवस्था की गई। किसी राष्ट्र की सम्पत्ति उसके युवक ही होते हैं। कृष्ण और बलराम ने इन युवाओं को बलिष्ठ और सच्चरित्र बनाने का पूरा प्रयत्न किया इन्हीं अठारह हजार यादव वीरों ने सतरह बार जरासन्ध की सेना से लोहा लिया।

गुप्तचरों द्वारा कंस को इस योजना का पता लग गया। वह सीधा कृष्ण और बलराम को पकड़ने का साहस नहीं कर सका क्योंकि समस्त गोकुल की जनता उनके साथ थी। इसके लिये उसने कूटनीति का सहारा लिया। उत्सव का आयोजन हुआ जिसमें मल्लयुद्ध के लिये कृष्ण और बलराम को भी आमन्त्रित किया गया। जब वे मथुरा में मल्लयुद्ध स्थल की ओर आ रहे थे तब कुवलयाश्व नाम के उन्मत्त हाथी को उनका वध करने के उद्देश्य से छोड़ा गया। श्रीकृष्ण ने उसका एक दाँत उखाड़ उसे यमलोक पहुँचा दिया। मल्लयुद्ध में कृष्ण ने कंस के मुष्टिक पहलवान को मृत्यु के घाट उतार दिया और बलराम ने चाणूर को। अपनी योजना विफल होते देख कंस उन पर झपटा परन्तु कृष्ण ने उसके केश पकड़ सिंहासन से उतार उसे भी यमपुर भेज दिया। जनमत उनके साथ था इसलिये किसी प्रकार का विद्रोह नहीं हुआ। श्रीकृष्ण ने मथुरा के राज्य सिंहासन पर कंस के पिता उग्रसेन को बिठाया।

कंस की मृत्यु का समाचार सुन उसके ससुर जरासन्ध ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया जिसका यदुवीरों ने शूरवीरता से सामना किया। एक के बाद दूसरा इस प्रकार जरासन्ध ने १७ बार आक्रमण किया परन्तु मथुरा को विजय नहीं कर सका। बार-बार के आक्रमण को देखते हुये यादवों ने मथुरा को छोड़कर द्वारका को अपनी आश्रयस्थली बनाया जहाँ किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं था।

पाण्डवों की माता कुन्ती श्रीकृष्ण की फूफी लगती थी इसलिये श्रीकृष्ण जी का उनके साथ अनन्य स्नेह था। महाभारत के युद्ध की तैयारी होने लगी। अर्जुन और दुर्योधन दोनों सहायता लेने के लिये द्वारका पहुँचे। दोनों यादवों के सम्बन्धी थे। श्रीकृष्ण जी ने कहा - एक ओर मेरी सेना और दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा तथा मैं शस्त्र भी ग्रहण नहीं करूंगा। आप जिसे लेना चाहें उसका चयन कर सकते हैं, परन्तु मैंने अर्जुन को पहले देखा है इसलिये चयन करने का अधिकार अर्जुन को पहले है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को मांग लिया और यादव सेना दुर्योधन के पक्ष में आयी।

युद्ध में श्रीकृष्ण जी अर्जुन के सारथी बने। स्मरण रहे युद्ध में नीति और शूरवीरता दोनों की ही आवश्यकता रहती है। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने परन्तु अपने सामने दादा भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य एवं सगे बन्धु-बान्धवों को देख अर्जुन को विषाद हो गया और योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कर्त्तव्य का बोध कराते हुये क्षत्रिय को धर्मयुद्ध से पराङ्मुख नहीं होना चाहिये इसका उपदेश दिया जो भगवद् गीता के नाम से जाना जाता है जिसका सार यही है कि हमारा कर्म में ही अधिकार है, फल में नहीं। फल तो ईश्वराधीन है। हे अर्जुन! जिन्हें तुम अपना सम्बन्धी मान रहे हो, ये लोग अपने पाप के कारण या

www.thearyasamaj.org

पापी का पक्ष लेने से पहले ही मर चुके हैं। आप तो केवल निमित्त मात्र हैं। अर्जुन का मोह भंग हुआ और वे शोक को त्याग युद्ध करने में तत्पर हुये।

महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण जी ने नीति से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण और दुर्योधन को मार्ग से हटाया और पाण्डवों की विजय हुई। युधिष्ठिर को धर्मराज्य की स्थापना के लिये सम्राट् पद पर अभिषिक्त किया। यह श्रीकृष्ण की नीति की ही विजय थी कि उन्होंने भारत को महाभारत बनाने में कंस, जरासन्ध, शिशुपाल जैसे बाधक कण्टकों का सफाया किया और दुर्योधन, दु:शासन, शकुनि और कर्ण की चाण्डाल चौकड़ी को समाप्त कराकर युधिष्ठिर को सम्राट् बनवाया जिसके कारण महाभारत के तीन हजार वर्षों के पीछे भी किसी विदेशी आक्रमणकारी ने इधर देखने का साहस नहीं किया।

महाभारत में श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र आप्त पुरुषों जैसा है जिसने जन्म से मृत्यु पर्यन्त कोई भी बुरा कर्म नहीं किया तो फिर उन पर चोरी, व्यभिचार, छल का आरोप गोपियों के संग रास रचाना, कुब्जा दासी से दुष्कर्म, स्नान करती गोपियों के वस्त्र चुराना, राधा के साथ नाचना, मक्खन चुराना आदि कहाँ तक उचित है। राधा का विवाह रायण गोप से हुआ था और वह कृष्ण का मामा लगता था। इसीलिये राधा कृष्ण की मामी हुई, प्रेमिका नहीं।

जहाँ कृष्ण के हाथ में बांसुरी, शिर पर मोर मुकुट और पार्श्व में राधा या गाय का चित्र है, वह सब काल्पनिक है। आज राष्ट्र को श्रीकृष्ण के उस चित्र की आवश्यकता है जिसके हाथ में सुदर्शन चक्र सुशोभित हो रहा है और वे धर्मयुद्ध के लिये शंखनाद कर रहे हैं।

राजनीति को जानना है तो इसे श्रीकृष्ण के महाभारत में कहे जीवन चरित्र को पढ़ना चाहिये। इसके अतिरिक्त कौटिल्य, अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य चाणक्य, छत्रपति शिवाजी, सरदार पटेल ये चार राजनीति के कुशल नायक हैं जिन्होंने राजधर्म को जाना और धर्मराज्य की स्थापना की।

एक बार तुलसीदास जी मथुरा गये और बांके बिहारी के मन्दिर में श्रीकृष्ण की प्रतिमा को देखकर कहा –

कहा कहो छवि आपकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब झुके धनुष बाण लो हाथ।।

उनको क्या पता था कि श्रीकृष्ण के हाथ में बांसुरी के स्थान पर उस समय का सबसे शक्तिशाली अस्त्र सुदर्शन चक्र था जिसकी शक्ति के सामने सभी योद्धा नतमस्तक थे।

स्वाभिमान के प्रतीक महाराणा प्रताप

अपनी अस्मिता को बनाये रखना ही स्वाभिमान है। जिस समय अनेक राजपूत राजा अपनी बहिन, बेटियों को अकबर के हरम में भिजवा कर उसकी अधीनता स्वीकार कर रहे थे उस समय सूर्यवंश का कुलदीपक, बप्पा रावल की सन्तान, स्वाधीनता का उपासक महाराणा प्रताप उससे लोहा ले रहा था। उसने अनेक संकटों को देखा। आज यहाँ तो कल दूसरे स्थान पर आश्रय लेना पड़ा। घास की रोटियाँ खाई परन्तु सिसोदिया वंश की मान-मर्यादा को आँच नहीं आने दी। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं जब तीन पीढ़ियों ने निरन्तर साम्राज्यवाद के विरुद्ध डटकर संघर्ष किया हो। यही कारण था कि महाराणा प्रताप को भारतीय आत्मा का प्रतीक मान आज भी आर्य सन्तान का सीना गर्व से उन्नत हो जाता है। महाराणा प्रताप के पिता उदय सिंह, महाराणा प्रताप और उनके पुत्र अमरसिंह ने यावज्जीवन मुगलों से संघर्ष किया और मेवाड़ की पताका को उन्नत बनाये रखा।

महाराणा प्रताप का बाल्यकाल कुम्भलगढ़ में व्यतीत हुआ। जंगलों में पिता के साथ रहने से वे वहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित हो गये और उनका सम्पर्क वहाँ रहने वाले भीलों से हो गया जिन्होंने अन्त समय तक महाराणा की प्राणपण से रक्षा की। महाराणा उदय सिंह अपनी छोटी रानी में आसक्त थे इस कारण प्रताप को

www.thearyasamaj.org

कुम्भलगढ़ में प्रतिकूल परिस्थितियों में रहना पड़ा परन्तु इस परिस्थिति ने उनमें धैर्य, साहस और दृढ़ निश्चय के गुणों को भर दिया। देश प्रेम की भावना उनमें कूट-कूट कर भर गई। अपने पिता के साथ अनेक सैनिक अभियानों में भाग लेने के कारण वे अस्त्र-शस्त्र चलाने में कुशल हो गये। प्रदेश के लोगों का ध्यान प्रताप की ओर आकर्षित होने लगा।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् सरदारों ने प्रताप को उत्तराधिकारी बनाया। इस समय उसकी आयु ३२ वर्ष की थी। उस समय अकबर हिन्दुस्थान का बादशाह था जिसने चार वर्ष पहले ही चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण कर ३०००० नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया। उसने अपने दूतों को कई बार प्रताप के पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर भेजा परन्तु जो रेखा अकबर ने अपने और मेवाड़ के बीच में खींच दी थी और मेवाड़ के वीरो के रक्त से जौहर की जो लपटें उठ रही थीं, उनको पारकरने की कल्पना भी प्रताप के मन में नहीं आ सकती थी। अकबर महाराण प्रताप के पितामह राणा सांगा और पिता उदयसिंह की दृढ़ता को भूल गया। उसने प्रताप की वीरता का मूल्यांकन भी ठीक प्रकार से नहीं किया।

जब सन्धि की वार्ता असफल हो गई हो इसका अन्तिम निर्णय युद्ध द्वारा ही होगा, यह जान अकबर और महाराणा प्रताप दोनों युद्ध की तैयारी में लग गये और एक दिन अकबर ने राजा मानसिंह के नेतृत्व में प्रताप का मान मिट्टी में मिलाने के लिये सेना को रवाना कर दिया।

१८ जून सन् १५७६ को हल्दी घाटी में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। तलवारें बिजलियाँ बरसाने लगी। तोपों की गड़गड़ाहट, हाथियों की चिंघाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट से मैदान गुंजायमान हो उठा। मानसिंह हाथी पर सेना के मध्य में स्थित था। महाराणा ने अपने घोड़े चेतक को उधर ही बढ़ा दिया। सामने हाथी को देख चेतक ने अपने अगले दोनों पैर उसके मस्तक पर रख दिये और महाराणा प्रताप ने मान सिंह को लक्ष्य बना कर भाले का प्रहार किया। मानसिंह हौदे में नीचे झुकर अपने को बचा गया अन्यथा उसी दिन उसका काम तमाम हो जाता। हाथी के सूण्ड में दो धारी तलवार थी जिससे चेतक के पैर जख्मी हो गये।

मानसिंह को संकट में देख मुगल सैनिकों ने महाराणा पर तीरों की बौछार करते हुये उन्हें घेर लिया। अपने स्वामी को संकटों में घिरा देख झाला मानसिंह ने उनका छत्र अपने ऊपर लगा लिया और शत्रुओं को ललकारा कि मैं ही प्रताप हूँ। मुगल सैनिक सभी उस पर टूट पड़े। महाराणा के सेवक उन्हें हल्दी घाटी की ओर लेकर बच निकले। इधर झाला मानसिंह भी वीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। विधि का विधान देखिये - एक ओर झाला मानसिंह अपना बलिदान देकर महाराणा के प्राणों की रक्षा कर रहा है। महाराणा के हरावल दस्ते में हकीम खान पठान है और दूसरी ओर मुगल सैनिक। वस्तुत: यह युद्ध हिन्दु-मुसलमान का न होकर स्वतन्त्रता प्रेमी एवं साम्राज्यवादियों में लड़ा जा रहा था।

महाराणा प्रताप को रणभूमि से जाते हुये कुछ मुगल सैनिकों ने देख लिया। वे उनके पीछे लग गये। इस घटना को प्रताप का छोटा भाई शक्ति सिंह देख रहा था। बड़े भाई को संकट में जान उसने अपना घोड़ा उधर बढ़ा दिया और मुगल सैनिकों को मार प्रताप के समीप आ गया तथा पैरों में गिरकर क्षमा याचना की। प्रताप ने उसे क्षमा कर दिया और शक्तावत सरदारों को अपनी सेना में सम्मानित स्थान दिया।

हल्दी घाटी के युद्ध में यद्यपि विजय किसी भी पक्ष की नहीं हुई। प्रारम्भ में महाराणा की सेना के प्रबल आघात से मानसिंह की सेना के पैर उखड़ गये और वह भाग निकली। अपनी योजना असफल होती देख मानसिंह ने सुरक्षित सेना को मैदान में उतारा। उधर यह अफ़वाह फैल गई कि घोड़े पर सवार होकर विशाल सेना के साथ स्वयं अकबर आ रहा है। इस समाचार से भागती मुगल सेना पुन: वापिस लौट पड़ी। प्रताप को इस विषम

www.thearyasamaj.org

स्थिति में जान सरदारों ने उनके घोड़े की बाग पीछे मोड़ दी। परन्तु मुगल सेना उन्हें पकड़ नहीं पाई। उसमें यह भय बैठ गया कि हल्दी घाटी की ओर बढ़े तो प्रताप उन्हें घेर कर मार डालेगा। फलस्वरूप मानसिंह पीछे लौट पड़ा।

हल्दीघाटी का युद्ध इस संघर्ष का प्रारम्भ ही था। स्वयं अकबर ने चार मास पश्चात् ही विशाल सेना को लेकर चढ़ाई की परन्तु वह भी प्रताप को पकड़ नहीं सका। इसके पश्चात् १८ वर्ष तक महाराणा प्रताप छापामार युद्ध करते रहे। जिस क्षेत्र को मुगल सेना जीत कर आगे बढ़ती, दूसरी ओर से वीर राजपूत फिर उस पर अपना आधिपत्य जमा लेते। अन्तिम १२ वर्षों में अकबर ने भी अपना अभियान बन्द कर दिया और चित्तौड़ को छोड़ अधिकांश किलों को महाराणा प्रताप ने अपने अधीन कर लिया।

जब उन्होंने मेवाड़ का राजसिंहासन सम्भाला तभी यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ को स्वाधीन नहीं कर लिया जायेगा तब तक मैं भूमि में शयन और पत्तलों पर भोजन करूंगा। उन्हें केवल २२ वर्ष राज्य करने का समय मिला। परन्तु ५६ वर्ष की आयु में ही राजस्थान की भूमि पर खिला यह फूल समय से पहले ही कुम्हला गया।

अन्तिम समय में राजकुमार अमर सिंह और सामन्त उसके पास खड़े थे। महाराणा के प्राण पखेरू इस शरीर को नहीं छोड़ रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे किसी मार्मिक पीड़ा से आहत हैं। सलूम्बर के रावत ने पूछा – हे महाराणा! क्या कारण है जिससे आहत होकर आप छटपटा रहे हैं। प्रताप ने अपने हृदय के उद्गार प्रकट करते हुये कहा कि यदि राजकुमार अमर सिंह और आप लोग आपत्ति सहकर भी मेवाड़ के गौरव की रक्षा की प्रतिज्ञा लें तो मेरी आत्मा शान्ति से इस शरीर को छोड़ सकती है। सरदारों एवं राजकुमार अमर सिंह ने तलवारें हाथ में लेकर बप्पा रावल की गद्दी की शपथ खाते हुये कहा हे महाराणा! हम प्रतिज्ञा करते हैं कि मरते दम तक मेवाड़ के गौरव को सुरक्षित रखेंगे। महाराणा के मुख पर प्रसन्नता एवं सन्तोष के भाव उभरे। थोड़ी देर में ही उनकी आत्मा ने शरीर को त्याग दिया यह घटना १९ जनवरी सन् १५९७ को हुई।

महाराणा प्रताप की मृत्यु का समाचार अकबर ने लाहौर में सुना तो वह स्तब्ध और उदास हो गया। आज अकबर को चुनौती देने वाला और कोई दूसरा वीर नहीं रहा यही उसकी उदासी का कारण था।

वीर शिवाजी

अपनी जान जोखिम में डालकर किसी कार्य को पूरा करना ही साहस कहलाता है। किसी कवि ने कहा है–

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्।।

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम ये जहाँ विद्यमान हों वहाँ दैव भी सहायक बन जाता है। शिवाजी में उपर्युक्त सभी योग्यतायें विद्यमान थीं। यही कारण था कि उनके द्वारा संचालित अभियान अधिकांश में सफल हुये। जीवित सिंह की मान्द में प्रविष्ट हो उसकी मूंछें उखाड़ लेना और सुरक्षित लौट आना विरले मनुष्यों का काम है। छत्रपति शिवाजी की गणना ऐसे ही साहसी शूरवीरों में होती है। उनके साहसिक, अभियानों को देख बड़े–बड़े धुरन्धरों ने भी दांतों तले अंगुलियां दबा लीं। योगेश्वर कृष्ण, आचार्य चाणक्य के पश्चात् शिवाजी ही ऐसे नीतिज्ञ हुये जो साम, दाम, दण्ड का यथा समय प्रयोग करने में सिद्धहस्त थे।

शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले बीजापुर के यहाँ सेना में अधिकारी थे। पूना में उनकी जागीर थी। जिसकी प्रबन्ध व्यवस्था दादा जी कोण्डदेव करते थे। शिवाजी अपनी माता के साथ पूना में ही रहते थे। उनकी शिक्षा–दीक्षा माता जीजा बाई एवं दादाजी कोण्डदेव के

मार्गदर्शन में ही हुई। माता जीजाबाई ने शिवाजी को बाल्यकाल में ही रामायण, महाभारत की कथायें सुनाकर वीरता कूट-कूट कर भर दी और शस्त्र संचालन का प्रशिक्षण दादा जी ने दिया। किसी ने ठीक ही कहा है -

माता का सिखाया सुत पूर्ण विद्वान् होत
माता का सिखाया बने कायर और क्रूर है।
माता का सिखाया पड़े अष्टादश व्यसन में
माता का सिखाया सब दुर्व्यसनों से दूर है।।

धन्य हैं वे सन्तान जिनको धार्मिक माता, सच्चरित्र पिता और योग्य गुरुजनों की संगति प्राप्त हुई है।

एक बार शिवाजी अपने पिता के साथ बीजापुर गये। उन्होंने देखा कि बाजार में एक कसाई गाय को मार रहा है। शिवाजी ने यह दृश्य देखा तो उन्होंने आनन-फानन में उस गोघातक को यमपुर भेज दिया। जब नवाब आदिलशाह को इसका पता लगा तो उसने नगर में यह घोषणा करा दी कि आगे से कोई भी खुले या सार्वजनिक स्थान में गोहत्या न करे।

एक दिन पिता जी उन्हें साथ लेकर दरबार में पहुंचे। सभी दरबारी सर झुकाकर आदिल शाह को सलाम कर रहे थे। छोटे राजा! बादशाह को सलाम करो। पिताजी की आज्ञा मान शिवाजी ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। "नहीं बेटे! शिर झुका कर सलाम करो।" "इतना झुककर तो मैं अपनी माता श्री को ही प्रणाम करता हूँ, अन्य किसी को नहीं।" "परन्तु दरबार में इसी भाँति नमस्कार करने की रीति है।" "पिताजी! मुझे यह रीति मंजूर नहीं है।" शिवाजी की वाणी गूंज उठी। सारा दरबार चकित रह गया।

धीरे-धीरे सह्याद्रि की घाटियों में रहने वाले मावलों को साथ लेकर शिवाजी ने अपनी शक्ति बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और माता जीजाबाई से आज्ञा प्राप्त कर मुट्ठी भर सैनिकों को साथ लेकर तोरण का किला विजय कर लिया। देखते ही देखते सिंहगढ़, पुरन्दर आदि किलों पर भी भगवा ध्वज फहराने लगा।

शिवाजी के बढ़ते प्रभाव ने आदिलशाह को बेचैन कर दिया। उसने दरबार में पान का बीड़ा रख दिया जिसे अफजल खान ने उठा लिया और कहा उस पहाड़ी चूहे की औकात ही क्या है? मैं उसके हाथ-पैर में हथकड़ी डालकर दरबार में पेश करता हूँ। विशाल सेना लेकर अफजल खान निकल पड़ा। छः मास तक वाई में डेरा डालने पर भी उसकी हिम्मत नहीं हुई कि शिवाजी पर हाथ डाले। तब उसने कूटनीति खेलते हुये अपना दूत शिवाजी के पास मिलने के लिये भेजा। शिवाजी ने दूत को विश्वास में लेकर यह जान लिया कि अफजल खान से भेंट होने पर प्राण हानि भी हो सकती है। इसीलिये वे भीतर लोहे का कवच और शिर पर लोहे का टोप पहन ऊपर पगड़ी तथा रेशम के वस्त्र पहन कर मिलने गये। प्रतापगढ़ के किले के पास लगाये तम्बू में दोनों की भेंट हुई। आओ! आओ!! कहते हुये अफजल खान कुर्सी से उठा ओर दोनों हाथ फैला कर गले मिलने का नाटक किया तथा बायें हाथ से शिवाजी की गर्दन पकड़ कर दाहिने हाथ से छुरी का प्रहार शिवाजी पर किया परन्तु भीतर लोहे का कवच पहनने के कारण शिवाजी बच गये और अपने हाथों में पहने बधनखों से उसकी आँतें फाड़ दी। यह देख अफजल खान का अंगरक्षक आगे बढ़ा और तलवार का प्रहार शिवाजी पर किया परन्तु शिर पर लोहे का टोप होने के कारण इस वार से शिवाजी सुरक्षित बच गये। अभी वह दूसरी बार प्रहार करने वाला था कि शिवाजी के अंगरक्षक जीवा जी महाल ने उसका प्रहार करने के लिये उठा हाथ ही पट्टे के वार से उड़ा दिया। अफजल खान एवं उसके अंगरक्षक का काम तमाम कर शिवाजी सकुशल प्रतापगढ़ के किले से उतर आये। संकेत पाते ही जंगलों में छिपी मराठों की सेना ने बीजापुर की सेना पर धावा बोल दिया। अकस्मात् हुये आक्रमण से उसे भागना पड़ा। शिवाजी को बहुत सारे अस्त्र-शस्त्र और धन की प्राप्ति हुई। उसने पन्हाला का दुर्ग भी अपने अधिकार में ले लिया।

www.thearyasamaj.org

अफजल खान के वध की बात दिल्ली तक पहुँची। उस समय औरंगजेब दिल्ली का शासक था। उसने अपने मामा शाइस्ताखाँ को विशाल सेना देकर शिवाजी को दबाने के लिये भेजा। उसके आते ही पूना पर अधिकार कर लिया तथा शिवाजी का पीछा करने की योजना बनाई। परन्तु शिवाजी पहले ही सावधान थे। उन्होंने एक बारात के रूप में पूना में प्रवेश किया और अवसर पाकर शाइस्ताखाँ के महल में दीवार तोड़कर प्रविष्ट हुये। वे उस महल की सारी स्थिति को जानते थे इसलिये जहाँ शाइस्ता खाँ सो रहा था उस कमरे में प्रविष्ट हो गये। यह देख शाइस्ता खाँ भागकर खिड़की द्वारा दूसरे प्रकोष्ठ की ओर लपका परन्तु शिवाजी की तलवार ने उसकी तीन अंगुलियाँ उड़ा दी। उसका पुत्र और सहयोगी मारे गये। यह कार्य सचमुच सिंह की मान्द में घुसकर उसकी मूंछे उखाड़ कर लाने जैसा था। शाइस्ताखाँ इस आकस्मिक आक्रमण से इतना भयभीत हुआ कि उसने पूना छोड़ अहमदनगर में अपना डेरा लगाया।

औरंगजेब ने विचार किया कि शिवाजी को पकड़ने के लिये किसी मुसलमान सेनापति का सामर्थ्य नहीं है इसलिये उसने मिर्जा राजा जयसिंह को भेजा। जयसिंह ने आते ही पूना और दूसरे किलों पर अधिकार कर लिया और प्रजा पर अत्याचार मुगल सैनिक करने लगे। विवश हो शिवाजी को राजा जय सिंह से सन्धि करनी पड़ी।

राजा जयसिंह ने औरंगजेब को पत्र लिखा कि शिवाजी का दक्षिण में रहना ठीक नहीं है। उसे किसी बहाने से आगरा आने का निमन्त्रण दिया जाये। राजा जयसिंह द्वारा आश्वासन दिये जाने पर शिवाजी अपनेपुत्र सम्भा जी के साथ आगरा पहुंचे। औरंगजेब के पचासवें जन्मदिवस पर दरबार में प्रत्येक सरदार उसे सिर झुका कर भेंट दे रहा था। शिवाजी ने भी जयसिंह के पुत्र रामसिंह द्वारा महाराष्ट्र की ओर से भेंट भिजवाई। आओ शिवाजी राजे! कहते हुये औरगजेब ने रामसिंह को संकेत किया कि शिवाजी को पञ्च हजारी सरदारों के पिछली पंक्ति में स्थान दिया जाये। शिवाजी इस अपमान को सहन नहीं कर सके और बोले एक बार मुझे महाराष्ट्र जाने दो फिर मैं देखता हूँ कि मेरा स्थान किस पंक्ति में होना चाहिये। औरंगजेब ने भी इसे सुना और शिवाजी को आगरे में बन्दी बना लिया।

अपने साथ धोखा हुआ यह विचार कर शिवाजी ने औरंगजेब को कैद से छूटने की योजना बनाई। यह समय शक्ति के स्थान पर युक्ति का था। शिवाजी ने बीमार होने का बहाना बनाया और अपने स्वस्थ होने के लिये फल-मिठाई को पिटारों में भरवाकर दीन दु:खियों में वितरित करने लगे। एक दिन अवसर पाकर इन्हीं दो पिटारों में पुत्र सहित सुरक्षित बच निकले और साधु का वेश बना औरंगजेब की आँखों में धूल झोंककर मथुरा, बनारस गोंडवन होते हुये महाराष्ट्र पहुँच कर माता जीजाबाई की चरण वन्दना की। सारे महाराष्ट्र में दीपमाला की गई। देखते ही देखते शिवाजी ने सन्धि में दिये गये सभी किलों पर फिर अधिकार कर लिया और रायगढ़ को राजधानी बना कर अपना राज्याभिषेक कराकर छत्रपति की उपाधि धारण की। माता जीजाबाई का स्वप्न पूरा हुआ।

शिवाजी सभी धर्मों का आदर करते थे। उन्होंने किसी मस्जिद को क्षतिग्रस्त नहीं किया। जब उनको कहीं कुरान की पुस्तक मिल जाती तो उसे सम्मानपूर्वक किसी मुसलमान को दे दिया जाता था। एक बार सूरत से उसके सैनिक किसी मुसलमान सरदार की पत्नी को पकड़ लाये। वह बहुत सुन्दर थी। जब उसे दरबार में पेश किया तो शिवाजी ने कहा हमारी लड़ाई अत्याचार करने वालों से है स्त्रियों से नहीं और वस्त्राभूषण देकर ससम्मान उसे वापिस भिजवा दिया। कवि भूषण ने आर्य जाति के गौरव वीर शिवाजी के लिये ठीक ही कहा है -

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो
स्मृति पुराण राखे वेद धुनि सुनि मैं।
राखो राजपूती रजधानी राखी राजन की
धरा में धर्म राख्यो गुण राख्यो गुणो में।।

www.thearyasamaj.org

आध्यात्मिक जीवन

योग–परिचय

'योग' शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ समाधि और मिलाना है। जिसमें मन को भली भाँति समाहित किया जाए वह समाधि और आत्मा की परमात्मा में स्थिति (मेल) को योग कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने योग की यह परिभाषा की है –

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है।

उपनिषदों के अनुसार अज्ञान का क्षय होकर ज्ञान का उदय होना ही योग है। गीता में '**योगः कर्मसु कौशलम्**', निष्काम भाव से कर्तव्य समझकर कर्म करना और '**समत्वं योग उच्यते**' जीवन में समत्व रखना, ये योग के लक्षण बतलाए हैं।

योग का फल –

१. आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति और परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

२. अविद्या, अज्ञान अर्थात् अविवेक का नाश होकर ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है, जिसके द्वारा किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

३. व्यक्ति सब क्लेशों से छूटकर संसार में ऐसे रहता है जैसे जल में कमल।

४. योगाभ्यास से शरीर में हल्कापन, रोगों से मुक्ति, मन में स्थिरता तथा संयम का उदय होकर परम शान्ति मिलती है।

५. जीवात्मा जन्म–मरण के चक्र से छूटकर अमृत=मोक्ष–सुख को सुदीर्घकाल तक भोगता है।

योग का महत्व –

१. योग व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करता है और उसे पूर्ण मानव बनाने का अत्युत्तम माध्यम है।

२. विज्ञान ने प्रकृति के अनेक रहस्यों को जान लिया है, परन्तु अपने विषय में हम बहुत कम जानते हैं। हमारा इस संसार में जन्म लेने का क्या प्रयोजन है? हममें और पशुओं में क्या अन्तर है? इसकी जानकारी योगाभ्यास द्वारा ही होती है। मनीषी लोगों ने कहा है –

अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।

योगाभ्यास द्वारा अपने–आप को जान लेना, यह मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म (कर्तव्य) है।

३. आज मनोविज्ञान कहता है कि बड़े–से–बड़ा वैज्ञानिक, गणितज्ञ या दार्शनिक भी अपनी बुद्धि के एक भाग का ही उपयोग कर पाता है। केवल योगी ही ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा बुद्धि का सम्पूर्ण उपयोग करने में समर्थ हो सकता है। आत्मा–परमात्मा का विज्ञान सबसे सूक्ष्म विज्ञान है। जिसने सारे विश्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया, परन्तु अपने–आपको नहीं जाना, उसका ज्ञान अधूरा है।

४. योग से आत्मा सुसंस्कृत होती है। योगाभ्यास से व्यक्ति के प्रसुप्त गुण उद्बुद्ध होते हैं। व्यक्ति पशुत्व के संस्कारों को छोड़कर देवत्व की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लेता है।

५. योग किसी धर्म विशेष या समुदाय से सम्बन्धित नहीं है। योग मानव–मात्र के लिए है। विश्व का

www.thearyasamaj.org

कोई भी धर्म या संस्कृति, जिसे सभी स्वीकार कर सकें, यदि कोई हो सकता है तो वह केवल योग ही है।

६. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्याधियों के शमन का उपाय योग द्वारा किया जा सकता है। आसनों द्वारा शारीरिक रोगों की निवृत्ति, प्राणायाम से पाप-भावनाओं का नाश और प्रत्यहार से मन के विकार शान्त होते हैं।

७. श्रीकृष्ण जी गीता में कहते हैं - हे अर्जुन! योगी सब तपस्वियों में श्रेष्ठ है। वह विविध शास्त्रों के जानने वाले पण्डितों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम (लौकिक) कर्म करनेवालों से भी श्रेष्ठ है, इसलिए तुम योगी बनो।

प्रश्न - मन क्या है?

उत्तर - मन आत्मा का एक उपकरण है जिसके द्वारा वह विषयों का ज्ञान करता है। आत्मा सीधा विषयों का ज्ञान नहीं कर सकता। वह मन को प्रेरित करता है, मन इन्द्रियों से युक्त होता है, इन्द्रियाँ विषयों से सम्बन्धित होती है, तब कहीं जाकर आत्मा को विषयों का ज्ञान होता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार - ये चारों अन्त:करण-चतुष्टय कहलाते हैं। संकल्प-विकल्प अर्थात् 'यह करना चाहिए या नहीं करना चाहिये यह कार्य 'मन' का है। यही करना चाहिए - ऐसा निर्णय करनेवाली 'बुद्धि' कहलाती है। संस्कारों को संचित करके सुरक्षित रखनेवाला 'चित्त' और जिससे आवेष्टित होकर जीवात्मा इस शरीर को 'अपना, मैं या मेरा' कहता है वह अहंकार कहा जाता है। 'योगदर्शन' में चित्त का अधिक प्रयोग किया है।

प्रश्न - क्या मन चेतन है?

उत्तर - इन चारों की रचना प्रकृति के सात्विक अंश से होने के कारण मन जड़ है, चेतन नहीं। चेतन आत्मा द्वारा प्रकाशित होने के कारण ही मन चेतन प्रतीत होता है।

योग के प्रकार - मन्त्र योग, लय योग, हठ योग और राजयोग - ये योग के चार भेद हैं। मन्त्र विशेष का जप करके मन एकाग्र करने को मन्त्रयोग, चित्त के विलीन हो जाने को लय योग, प्राण सुषुम्णा में प्रवाहित होने की अवस्था को हठयोग, तथा महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग को राजयोग कहा है। पहले तीन राजयोग के सहायक हैं। सभी योगों में प्रधान होने के कारण इसका नाम राजयोग है।

अष्टांग योग

१. **यम** (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह)

२. **नियम** (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान)

३. **आसन** - स्थिरता और सुखपूर्वक बैठना।

४. **प्राणायाम** - श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना।

५. **प्रत्याहार** - इन्द्रियों को विषयों से हटाना।

६. **धारणा** - चित्त को एक स्थान पर टिकाना।

७. **ध्यान** - चित्तवृत्ति का एक स्थान पर निरन्तर बने रहना।

८. **समाधि** - ध्येय का ही ज्ञान अवशिष्ट रह जाना या परमात्मा में निमग्न होना।

यम -

१. **अहिंसा** - सबसे वैर-भाव त्यागना।

२. **सत्य** - जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, जैसा अपने मन में हो उसको वैसे ही कहना, करना और मानना सत्य कहलाता है। परन्तु वह सत्य मधुर और परोपकारक होना चाहिए।

३. **अस्तेय** - मन, वचन, कर्म से चोरी का सर्वथा त्याग। बिना आज्ञा के किसी की वस्तु को न लेना।

www.thearyasamaj.org

४. **ब्रह्मचर्य** - उपस्थेन्द्रिय का संयम। वीर्य का रक्षण करना।

५. **अपरिग्रह** - अपनी आवश्यकता से अधिक धन, सम्पत्ति और साधनों का संग्रह न करना।

नियम -

१. **शौच** - शरीर की बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि।

२. **सन्तोष** - किए हुए पुरुषार्थ में ही सन्तुष्ट रहना।

३. **तप** - धर्मार्थ, अच्छे कार्य के लिए कष्टों को सहना।

४. **स्वाध्याय** - आत्मा-परमात्मा-सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़ना। ओ म् या ईश्वर के किसी नाम का जप करना।

५. **ईश्वरप्रणिधान** - अपने-आपको सर्वात्मना ईश्वर को समर्पित कर देना।

अष्टांग योग में यम-नियमों का पालन आधारभूमि है। नियमों के साथ यमों का भी पालन करना चाहिए। अन्यों के साथ व्यवहार करने के लिए यम, तथा अपने जीवन में आचरण के लिए नियमों का विधान किया है।

तीन अनादि पदार्थ

ईश्वर, जीव, प्रकृति

किसी भी वस्तु के निर्माण के लिए तीन साधनों का होना आवश्यक है। जिससे वस्तु का निर्माण करना है वह सामान या कच्चा पदार्थ, वस्तु का बनानेवाला तथा जिन उपकरणों से उसका निर्माण किया गया है - इन तीनों का होना अनिवार्य है। इन्हें क्रमशः उपादान कारण, निमित्त कारण और साधारण कारण कहते हैं। जैसे घड़े के बनाने में मिट्टी उपादान कारण, कुम्हार निमित्त कारण, और दण्डचक्रादि साधारण कारण हैं। ऐसे ही सर्वत्र जानना चाहिए।

कोई भी वस्तु अपने-आप नहीं बन सकती जब तक कि उसका बनानेवाला न हो। जड़ पदार्थ में यह योग्यता नहीं है कि वह अपने-आप किसी व्यवस्थित आकृति में परिणत हो जाय। उसे व्यवस्थित आकृति देने या रूपान्तरित करने के लिए चेतन का सहयोग लेना ही होगा। हमारे हाथ में बँधी हुई घड़ी क्या अपने आप बन गई? अथवा इसे किसी कारखाने या मिस्त्री ने बनाया? ईंट, सीमेन्ट और लोहे की छड़ों से बना कई मंज़िलों वाला सुन्दर भवन बिना किसी विद्वान् शिल्पी या इंजीनियर के कैसे बन सकता है? संसार की सभी वस्तुओं पर दृष्टिपात करें तो उन्हें बनानेवाला कोई अवश्य है, यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

जब हमें इस बात का ज्ञान हो गया कि कोई भी वस्तु, बनानेवाले के बिना नहीं बन सकती तो फिर हमारी पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, उपग्रह और विविध नक्षत्रों को बनानेवाला भी कोई अवश्य होना चाहिए। भाँति-भाँति के वृक्ष, फल, लता, औषधि, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जलचर, स्थलचर, नभचर प्राणी क्या अपने-आप ही बन गए? पृथिवी का नियमपूर्वक २४ घण्टे में अपनी कीली पर एक चक्र पूरा करना, वर्षभर में सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा कर लेना, ऋतुओं का बदलना इत्यादि बहुत-से कार्य जिसकी प्रेरणा से हो रहे हैं, उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर जीवों के लिए सृष्टि का निर्माण प्रकृति से करता है। सृष्टि की रचना में प्रकृति उपादान कारण, ईश्वर निमित्त कारण और जीवात्मा साधारण कारण है। ये तीनों अनादि पदार्थ हैं अनादि उसे कहते हैं जिसका प्रारम्भ किसी से न हो - जो सदा से विद्यमान हो। अब कोई पूछे कि इनको भी बनानेवाला कोई और होना चाहिए तो उसको बनानेवाले किसी अन्य तीसरे की आवश्यकता होगी, तीसरे को अन्य किसी चतुर्थ की। इस प्रकार यह अनवस्था-दोष आ जाएगा और अन्त में किसी एक को सबसे आदि कारण मानना ही होगा। इस आदिकारण का नाम ही ईश्वर है।

www.thearyasamaj.org

कारण से कार्य होता है। कारण का कारण नहीं होता। जैसे वृक्ष कार्य और बीज उसका कारण है। पहले बीज का निर्माण ईश्वर के रचना-कौशल्य से प्रकृति के विविध परमाणुओं से मिलने से होता हे और आगे वही बीज जल, वायु, धूप, मिट्टी के सहयोग से पूरा वृक्ष बन जाता है। उस वृक्ष के बीज पुन: वृक्ष का आकार ध ारण कर लेते हैं। इस प्रकार यह चक्र अनवरत रूपसे चलता ही रहता है।

जुलाहा जो वस्त्र बुनता है उसका उपादान-कारण कपास या ऊन है। कपास के तन्तुओं से सूत और फिर उनसे वस्त्र का निर्माण होता है। जैसे बिना कपास के वस्त्र का बनाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है, इसी भाँति प्रकृति के बिना ईश्वर भी अपने में से सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता। ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। बिना उपादान कारण के किसी वस्तु का निर्माण होना सम्भव नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सृष्टि की रचना के लिऐ उपादान - प्रकृति का होना भी आवश्यक है और वह भी अनादि है। यदि वह अनादि न होकर उसका भी कोई कारण माना जाए तो फिर वह अनवस्था-दोष आ जाएगा और अन्त में किसी एक को अनादि कारण मानना ही होगा।

जैसे कुम्हार घड़े और जुलाहे वस्त्र दूसरों के लिए बनाते हैं, उनकी निजी आवश्यकताएँ तो बहुत न्यून होती हैं, यदि उनका खरीदनेवाला या उपभोक्ता कोई न हो तो फिर घट और पट का निर्माण निष्प्रयोजन हो जाएगा, ऐसे ही ईश्वर प्रकृति से सृष्टि का निर्माण बिना किसी प्रयोजन के किसलिए करेगा? इसके लिए किसी साधारण कारण का होना अनिवार्य है और वह कारण जीवात्मा ही हो सकता है, अन्य नहीं।

सृष्टि-रचना में ईश्वर का प्रयोजन -

सृष्टि के बनाने में ईश्वर के दो प्रयोजन हैं -

१. अपनी विद्या, रचना-कौशल्य का प्रकाश करना।

२. जीवों को कर्मानुसार फल देना।

पुण्य कर्मों का फल सुख और पाप का दु:खरूप फल सब जीवों को ईश्वर की न्याय-व्यवस्था से विभिन्न योनियों में भोगना पड़ता है। यदि ईश्वर सृष्टि का निर्माण नहीं करता तो बिना शरीर और भोग्य पदार्थों के जीव पाप-पुण्य का फल कैसे भोगता और मुक्ति का सुख कैसे प्राप्त करता?

अपनी विद्या तथा ज्ञान का प्रदर्शन इसलिए है कि सृष्टि-रचना को देख उसके रचयिता को सब लोग जानें तथा पाप से पृथक् हो शुभ कर्मों का अनुष्ठान करके मुक्ति-सुख को प्राप्त होवें।

१. प्रकृति का स्वरूप

प्रकृति सत् अर्थात् सत्तात्मक है। सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति स्वयं में जड़ है। सृष्टि-रचना के समय परमात्मा की ईक्षण-क्रिया से प्रकृति में हलचल होकर महत्तत्त्व बुद्धि का निर्माण होता है। महत्तत्त्व से अहंकार, पंञ्चतन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पाँच स्थूल भूतों की रचना होती है। जीवों के कर्मानुसार प्रकृति विविध भोगों को प्रदान करती है। अविवेक के कारण पुरुष प्रकृति में घटित गुणों को अपने में मानकर सुखी-दु:खी होता है। विवेक हो जाने से पुरुष को जब वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है तो उसके प्रकृति से पराङ्मुख हो जाने के कारण प्रकृति भी उसको बन्धन से मुक्त करके, अन्य अविवेकी जनों को अपने बन्धन में बाँधे रखकर, विविध ा नाच नचाती रहती है। जड़ प्रकृति में चेतन के सान्निध्य से विविध भोगों को प्रदान करने का सामर्थ्य है।

२. जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव

आत्मा जब शरीर को धारण करता है तो उसकी संज्ञा जीव या जीवात्मा हो जाती है।

जीव के गुण - इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख, ज्ञान, श्वास, प्रश्वास, नेत्रों का खोलना, बन्द करना, जीवन, स्मृति, गति, इन्द्रियों से क्रिया तथा भूख-प्यास की

www.thearyasamaj.org

अनुभूति - ये जीव के गुण हैं। जहाँ उपर्युक्त क्रियाएँ हों, वहाँ जीव का अस्तित्व मानना चाहिए। इसमें ज्ञान और प्रयत्न तो जीव के स्वाभाविक गुण हैं और शेष नैमित्तिक हैं। जब तक जीवात्मा इस शरीर मे रहता है, तभी तक ये गुण प्रकाशित होते हैं।

जीव के कर्म - जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और उसका फल भोगने में परतन्त्र है। यदि वह फल भोगने में भी स्वतन्त्र होता तो कोई भी जीव अपनी इच्छा से पाप-कर्मों का दु:खरूप फल भोगने को तैयार न होता। इसी भाँति जीव, परमेश्वर की इच्छानुसार अर्थात् जैसा परमेश्वर चाहता है वैसा ही कर्म करता तो उन कर्मों का फल भी उसको न भोगना पड़ता। क्योंकि, जब उसने अपनी इच्छा से कर्म किए ही नहीं तो उनका फल वह क्यों भोगेगा? सभी अच्छे-बुरे कर्मों के संस्कार चित्त में संचित होते रहते हैं। मरते समय इन्हीं संस्कारों से आविष्ट जीव वैसी ही योनि में परमात्मा की व्यवस्था से चला जाता है। उस योनि में पूर्व-संस्कारों के प्रभाव से वैसे ही कर्म करने लगता है। इस प्रकार यह जन्म-मरण का चक्र तब तक चलता रहता है जब तक कि इससे मुक्त होने का उपाय नहीं किया जाता।

जीव का स्वभाव - जीव सत्, चित्स्वरूप और शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाववाला है। मुक्त का अभिप्राय है - सत्त्व, रज, तम तीनों से पृथक्।

जीव का परिमाण - जीव परिच्छिन्न, अव्यापक और अणुपरिमाणवाला हैं यदि वह विभु, व्यापक होता तो उसका जागना, सोना, स्वप्न, जन्म, मरण, जाना, आना इत्यादि क्रियाओं का होना सम्भव नहीं था।

३. जीवात्मा की चार अवस्थाएँ

१. **जाग्रत्** - इस अवस्था में बुद्धि से अर्थों का निश्चय करता, मन से संकल्प-विकल्प, इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान और कर्मेन्द्रियों से क्रिया में प्रवृत्त रहता है।

२. **स्वप्न** - इस अवस्था में शरीर और इन्द्रियाँ तो विश्राम करते हैं परन्तु मन चलायमान रहता है। वह अन्त:करण में संचित संस्कारों से अनेकविध कल्पना करके स्वप्नलोक की सृष्टि करता है।

३. **सुषुप्ति** - जब आत्मा मन, बुद्धि और इन्द्रियों को साथ लेकर हृदय में स्थित पुरीतत् नाड़ी में परमात्मा के सान्निध्य में निवास करता है, तो इस अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं।

४. **तुरीय** - आत्मा जब इन पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं से भिन्न समाधि-अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार करता है, तो इस स्थिति को तुरीय अवस्था कहते हैं सुषुप्ति में भी वह परमात्मा के सान्निध्य में रहता है, परन्तु उस समय तमोगुण से आच्छादित रहने के कारण आत्मा को परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। समाधि-अवस्था में सत्त्वगुण का उदय होने से आत्मा को ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान रहता है। यही समाधि और सुषुप्ति में अन्तर है।

जीवात्मा का निवास - जीवात्मा का निवास मूलरूप से हृदय में है। वह सुषुप्ति और समाधि में हृदय में तथा जाग्रत् अवस्था में मस्तिष्क में रहता है।

ईश्वर

किसी भी रचना को देखकर उसके रचयिता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसी आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति तथा विविध रचना को देखकर इनकी रचना करनेवाले शक्ति का अनुमान किया जाना सम्भव है। इस शक्ति को वैदिक धर्म में ईश्वर कहा गया है। अन्य धर्मों में इसे दूसरे नामों से पुकारा जाता है, परन्तु इस मन्तव्य से सब सहमत हैं कि इस जगत् को रचनेवाली, धारण और प्रलय करनेवाली कोई शक्ति है अवश्य, जिसे नेचर, कुदरत, खुदा, गॉड, ब्रह्मा आदि किसी भी नाम से सम्बोधित किया जाए।

www.thearyasamaj.org

ईश्वर का स्वरूप

किसी का स्वरूप जानने के लिए उसके गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान करना चाहिए। यदि वस्तु केवल जड़स्वरूप है तो उसके गुणों को जान लेना ही पर्याप्त है, क्योंकि जड़ में क्रिया का अभाव होने से कर्म का भी अभाव होगा। परन्तु चेतन-तत्त्व बिना कर्म के क्षणभर भी नहीं रह सकता। गुण और कर्मों की पुनः-पुनः प्रवृत्ति स्वभाव में परिवर्तित हो जाती है।

महर्षि दयानन्द जी ने वेद तथा दर्शनों के आधार पर ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का विशद वर्णन किया है-

'ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।' विषय को समझने के लिए इनका पृथक् विवेचन करना उपयोगी रहेगा।

ईश्वर के गुण - ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों है।

सगुण - सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी इत्यादि।

निर्गुण - निराकार, निर्विकार, अनादि, अजन्मा, अनन्त, अजर, अमर अभय इत्यादि।

निर्गुणत्व में ईश्वर का निराकार होना बहुत महत्वपूर्ण है। स्वयं वेद ने ईश्वर को 'अकायम्' अर्थात् शरीररहित बतलाया है। जो वस्तु निराकार है वही सूक्ष्म होने से सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ गुणोंवाली हो सकती है। सर्वज्ञता के कारण ही ईश्वर सबके कर्मों को जान उनका यथायोग्य फल देता है। यदि ईश्वर को साकार माना जाए तो वह एकदेशी मानना होगा। एकदेशी का यह सामर्थ्य नहीं कि वह सर्वव्यापक हो सके। बिना सर्वव्यापक के सर्वज्ञता सम्भव नहीं और बिना सर्वज्ञता के न्यायकारी नहीं हो सकता।

ईश्वर का दूसरा महत्वपूर्ण गुण उसका सर्वशक्तिमान होना है। निराकार वस्तु ही सर्वव्यापक, तथा सर्वव्यापक ही सर्वशक्तिमान हो सकती हैं परन्तु सभी निराकार वस्तुएँ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान हों - ऐसा नियम नहीं है। ईश्वर के अन्य सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी आदि गुण भी उसके सर्वशक्तिमान होने के कारण ही सम्भव हैं। सर्वशक्तिमान का अभिप्राय यह है कि ईश्वर को अपने कार्य-जगत् की रचनाकरना, उसका धारण और प्रलय करना तथा जीवों को उनके कर्मानुसार फल देने में किसी दूसरे के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ईश्वर के कर्म - ईश्वर के दो मुख्य कार्य हैं -

१. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना।

२. न्याय करना, सब जीवों को उनके कर्मानुसार यथायोग्य फल देना।

सृष्टि की रचना करने में ईश्वर के दो प्रयोजन हैं -

१. सब जीवों को कर्मानुसार यथायोग्य फल देना। बिना शरीर के सुख-दुःखरूप फलों का भोग नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त इस मानव-शरीर को पाकर बहुत-से धर्मात्मा पुरुष मुक्ति के साधनों का अनुष्ठान करके मोक्ष पद को भी प्राप्त होते हैं।

२. अपना बल, सामर्थ्य और विज्ञान का प्रकाश करना। यदि ईश्वर सृष्टि की रचना नहीं करता तो उसे कौन जानता? क्योंकि, कार्य को देखकर उसके कर्त्ता और रचना के द्वारा उसके रचयिता का ज्ञान होता है।

प्रश्न - जब आपने ईश्वर को निराकार बतलाया है तो बिना आकार व हाथ-पैरों के वह सृष्टि की रचना कैसे करता है?

उत्तर - यदि ईश्वर आकार या हाथ-पैरवाला होता तो स्वाभाविक ही वह एकदेशी होता। एकदेशी होने से उसकी शक्ति भी सीमित होती। स्थूल शरीरवाला होने

www.thearyasamaj.org

से वह प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को पकड़कर उन्हें सृष्टि-रूप में कैसे परिणत कर सकता है? परमाणुओं को एकत्रित करके उनसे सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों की रचना वही कर सकता है जो उनसे भी सूक्ष्म और शक्तिशाली हो। ईश्वर प्रकृति से भी सूक्ष्म और व्यापक होने के कारण अपनी ईक्षण-क्रिया के द्वारा परमाणुओं को गति देकर उन्हें विभिन्न अनुपात में संयुक्त कर महत्तत्त्व बुद्धि से लेकर स्थूल तत्त्व पृथिवी तक २४ तत्त्वों की रचना करता हैं सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने से वह सृष्टि को धारण भी कर रहा है। जब इस सर्ग का समय पूरा हो जाएगा तो इसकी प्रलय भी उसी द्वारा की जाएगी।

प्रश्न - आज विज्ञान ने अन्वेषण करके यह जान लिया है कि सृष्टि का बनाने वाला कोई नहीं है। यह अपने-आप ही बनी है। आज से अरबों वर्ष पहले कोई बहुत बड़ा तारा सूर्य के समीप से गुज़रा। उसके गुरुत्ववाकर्षण के प्रभाव से सूर्य में समुद्र के समान ज्वार उठ खड़ा हुआ और सूर्य का कुछ पदार्थ उससे पृथक् हो उसके चारों ओर घूमने लगा। कालान्तर में यही पदार्थ शीतल होकर पृथिवी तथा अन्य ग्रहों में परिणत हो गया। अथवा दूसरा पक्ष यह भी है कि बहुत समय पहले आकाश में गैस के रूप में चमकीला पदार्थ गति कर रहा था। उसमें अकस्मात् विस्फोट हुआ और उस पदार्थ के अलग-अलग खण्डों में बँट जाने से सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई। इसे नेबुला-थ्योरी भी कहा जाता है।

उत्तर - ये दोनों तर्क युक्ति की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। बिना चेतन सत्ता के जड़ परमाणुओं का एक निश्चित अनुपात से मिलकर सृष्टि रचना कर उनका या उनमें विस्फोट होकर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होना ठीक वैसा ही कार्य है जैसे कोई कहे कि एक बहुत बड़े मुद्रणालय (प्रेस) में अकस्मात् विस्फोट हुआ, उसमें स्थित टाइप के अक्षर ऊपर उछलकर नीचे गिरते समय इस विधि से आपस में जुड़ गए कि उनसे छपकर गीता की पुस्तक तैयार हो गई।

वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रकृति में बिखरे हुए विविध तत्त्वों में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और गन्धक के ४०००० तक परमाणु एक भारी अणु (मोलीक्यूल) में विद्यमान होते हैं। यह प्रोटीन का एक अणु है जो कि जीव-जगत् का एक अनिवार्य अंग है। इन सब तत्त्वों की निश्चित अनुपात में अपने-आप मिलने की कितनी सम्भावना है - इसका हिसाब चार्ल्स यूजीन गुई नाम के स्विस वैज्ञानिक ने लगाया है जिसके अनुसार १० को १० से १६० बार गुणा किया जाए तो इतने अवसरों में एक बार अपने-आप मिलने की सम्भावना है।

हम देखते हैं कि सृष्टि में सर्वत्र नियमबद्धता है। सभी ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रादि अपनी परिधि में घूम रहे हैं। सूर्य समय पर उगता है। पृथिवी सूर्य से ९ करोड़ ३२ लाख मील दूरी पर स्थित हैं यदि वह सूर्य से दो-गुनी दूरी पर स्थित होती तो सूर्य से मिलने वाली ऊर्जा का चतुर्थांश ही मिल पाता। घूमने का वेग आधा रह जाने से ऋतुओं की अवधि बढ़ जाती और शीत ऋतु में इतनी बर्फ़ जमती कि सब-कुछ जम जाता। इसी भाँति यदि पृथिवी सूर्य से वर्तमान दूरी से आधी दूरी पर स्थित होती तो गर्मी के कारण सभी प्राणी जल-भुन जाते। इसी भाँति चन्द्रमा पृथिवी से वर्तमान दूरी से आधा दूर होता तो उसकी आकर्षण-शक्ति से समुद्र में इतना ज्वार उठता कि हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी भी दिन में दो बार समुद्र के जल में डूब जाती।

सृष्टि में विविधता होते हुए भी एकरूपता है। सभी छोटी और बड़ी वस्तुओं में एक ही नियम सूक्ष्म रूप से काम करता है। एक छोटे अणु को ही लीजिए जिसके केन्द्रक (न्यूट्रोन) के चारों ओर प्रोटोन और इलेक्ट्रोन के कण गति कर रहे हैं। यह एक सौरमण्डल का ही मॉडल प्रतीत होता है। भूमि पर तीन-चौथाई भाग पानी है। हमारे शरीर में भी लगभग उतनाही जलीयांश है। हमारे शास्त्रों की यह युक्ति - **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** आज विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती प्रतीत होती

www.thearyasamaj.org

है। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि सृष्टि को बनाने के पीछे किसी बुद्धिमान् चेतन सत्ता का हाथ अवश्य है। मनुष्य का यह सामर्थ्य नहीं है कि वह सृष्टि की रचना कर सके। इसलिए उस परम शक्ति, जिसे ईश्वर कहते हैं, को इसका रचियता स्वीकार करना ही पड़ता है।

प्रश्न - यह बात तो मानी कि सृष्टि अपने-आप न बनकर ईश्वर ने इसे बनाया, परन्तु कर्मों का फल तो अपने-आप ही मिल जाता है। कर्म का अन्तिम भाग ही उसके फल में परिणत हो जाता है, जैसे भूखे व्यक्ति द्वारा भोजन करने पर भूख अपने-आप ही शान्त हो जाती है। आम बोने वाले को आम और बबूल बोने वाले को काँटे ही मिलेंगे। इसमें ईश्वर के हस्तक्षेप की क्या आवश्यकता है?

उत्तर - कर्म स्वयं जड़ है तो अपने-आप फल में परिणत नहीं हो सकता। कर्म करने के पश्चात् समाप्त हो जाता है तो उसका फल कैसे मिलेगा? कर्म से पड़नेवाला संस्कार भी जड़ होने से फल देने में असमर्थ है। आपका यह कहना कि भोजन करने से भूख अपने-आप शान्त हो जाती है, उचित नहीं है। भोजन के पश्चात् भूख का शान्त हो जाना कर्म का फल न होकर उसका प्रभाव-मात्र है।

जीव भी स्वयं कर्मों का फल प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि कोई भी जीव पापयुक्त कर्म कर उसका दु:खरूप फल अपनी मर्ज़ी से लेना नहीं चाहेगा। लोक में भी हम देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति अपराध करता है तो समाज या राज्य-व्यवस्था द्वारा ही उसे दण्ड मिलता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर ही सब जीवों के अच्छे और बुरे कर्मों का फल देता है।

प्रश्न - यदि ईश्वर कर्मों का फल देता है तो वह क्षमा भी कर सकता है। जैसे अनुनय-विनय करने पर राजा भी दण्ड को क्षमा, या अल्प दण्ड देकर छोड़ देता है।

उत्तर - ईश्वर अपराधी को दण्ड देने के स्थान पर क्षमा करता है तो उसकी न्याय-व्यवस्था में दोष आ जाने के कारण वह न्यायकारी नहीं हो सकता, क्योंकि न्याय उसी को कहते हैं कि जो जितना अपराध करे उसको उतना ही दण्ड देना - न अधिक न न्यून देना।

प्रश्न - जब ईश्वर क्षमा नहीं करता तो उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना क्यों करे?

उत्तर - ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना से अनेकविध लाभ होंगे -

१. स्तुति करने से ईश्वर में प्रीति और उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव में भी सुधार होगा।

२. प्रार्थना से निरभिमानता, निर्भयता और अहंकार की निवृत्ति होगी।

३. उपासना से ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

४. आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि वह पहाड़-जैसी आपत्ति आने पर भी अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं होता।

प्रश्न - ईश्वर अवतार लेता है या नहीं?

उत्तर - नहीं। अवतार नीचे उतरने या सीढ़ी को कहते हैं। जो वस्तु एकदेशी है, वही ऊपर से नीचे उतर सकती है। ईश्वर के सर्वव्यापक होने के कारण उसमें उतरना-चढ़ना इत्यादि व्यवहारों का होना सम्भव नहीं है। अवतार लेने से ईश्वर को एकदेशी और विकारी मानना होगा। एकदेशी वस्तु सर्वव्यापक और सर्वज्ञ नहीं हो सकती। इसलिए ईश्वर को एकदेशी मानने पर कई दोषों की उत्पत्ति हो जाएगी।

प्रश्न - जैसे किसी देश का राजा राजधानी में रहता हुआ भी समस्त देश के समाचारों को जानता और अपराधियों को यथायोग्य दण्ड भी देता है, ऐसे ही ईश्वर भी अवतार लेकर न्याय करने में क्यों नही समर्थ होगा?

www.thearyasamaj.org

उत्तर – राजा कितना भी जानने का प्रयत्न करे, पूर्ण रूप से नहीं जान सकता। उसे सारे राज्य की सूचना प्राप्त करने और अनुशासन को भंग करने वाले लोगों को अनुशासित करने के लिए कितनी बड़ी सेना, पुलिस, न्यायाधीश और गुप्तचरों की व्यवस्था करनी पड़ती है, तब भी वे राज्य की सभी सूचनाओं से अवगत नहीं हो सकते। इसलिए उनका न्याय या दण्ड विधानपूर्ण नहीं कहा जा सकता। जब वेदादि शास्त्रों में ईश्वर को 'अज' अर्थात् जो जन्म नहीं लेता, और 'अकाय' (जो शरीर धारण नहीं करता) कहा है तो फिर अवतार की मिथ्या धारणा को कैसे माना जाए? उसका शरीर न होने से उसकी मूर्ति भी नहीं बनाई जा सकती।

प्रश्न – ध्यान के लिए कोई साकार वस्तु, मूर्ति आदि सामने रहे तो मन उसमें सहज ही लग जाता है। निराकार वस्तु में वैसा ध्यान लगना कठिन है।

उत्तर – जब मनुष्य द्वारा बनाई मूर्ति को सामने रखने से ईश्वर का स्मरण होता है तो ईश्वर के बनाए पर्वत, वन, नदियाँ, समुद्र तथा विविध प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, वृक्षादि को देखकर उनके बनाने वाले का स्मरण क्यों नहीं करते? मूर्ति में ध्यान लगाने पर कभी उसके मुख, कभी हाथ और कभी पैर के ऊपर जाने से एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अजन्मा, अनन्त गुणों वाले ईश्वर को एक पाषाण में मान उसके सामने हाथ जोड़ना, साष्टांग दण्डवत् करना, धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाना कहाँ की समझदारी है? जड़ पाषाण की पूजा करने से उपासक मे उसके जड़तादि गुण अवश्य आते हैं।

प्रश्न – क्या मूर्ति में ईश्वर नहीं हैं?

उत्तर – हैं क्यों नहीं! वह तो एक-एक परमाणु में व्यापक है।

प्रश्न – तो फिर मूर्ति में ईश्वर को मान उसका ध्यान करने से क्या हानि है?

उत्तर – ईश्वर सब स्थानों में होने से मूर्ति में भी है, परन्तु आत्मा तो मूर्ति में नहीं है। मेल वहीं पर हो सकता है जहाँ आत्मा और परमात्मा दोनों विद्यमान हों।

प्रश्न – वह स्थान कौन-सा है?

उत्तर – हृदय।

प्रश्न – कृपया ईश्वर का ध्यान, स्तुति, उपासना आदि की विधि बतलाने का कष्ट करें?

उत्तर – ध्यान की विधि संक्षेप में निम्न रीति से करनी योग्य है – प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में शौचादि से निवृत्त होकर एकान्त देश में कोमल आसन पर बैठकर ग्रीवा, वक्ष और कटिप्रदेश को सीधा रखते हुए प्राणायाम करें। पश्चात् नासिका, भ्रूमध्य, मूर्धा, कण्ठ, हृदय, नाभि या मूलाधर चक्र में से किसी एक स्थान पर मन को एकाग्र कर, श्वास-प्रश्वास के साथ ओम् का जप करें और ओम् का अर्थ रक्षक, व्यापक तथा ईश्वर के अन्य गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन करता हुआ सर्वात्मना अपने-आपको उस परमेश्वर को समर्पित कर दें। अभ्यास करते हुए ध्यान को इतना बढ़ाएँ कि अन्त में ध्येय-ईश्वर ही शेष रह जाए। जैसे कोई व्यक्ति जल में गोता लगाकर कुछ समय तक उसी में निमग्न रहता है, वैसे ही प्रयत्नपूर्वक बार-बार ईश्वर के ध्यान में निमग्न होने का प्रयत्न करें। जो व्यक्ति इस विधि से प्रातः-सायं १-१ घण्टा उपासना करता है, वह उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त होता जाता है।

सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन-मन से सेवा करें। – ऋषि दयानन्द

www.thearyasamaj.org

मिथ्यारोपः

❑ ब्र. शिवदेवार्यः....

कश्मिचिद् ब्रह्मवाणीनामेकप्रदेशे एक सोमदत्तनामको वृद्धः प्रतिवसति स्म। तस्मिन् ग्रामे सहस्राद्प्यधिकाः जनाः निवसन्ति स्म। तेषामेकः आसीत् मङ्गलनामको युवकः। सर्वे जनाः प्रीत्या स्वजीवनं यापयन्ति। ग्रामे अनेकपर्वेषु -उत्सवेषु अन्यविशिष्टदिवसेषु सर्वे जनाः मोदमानाः भवन्ति। ग्रामे यथावसरं बालकानां प्रोन्नताय प्रतियोगिताः अपि भवन्ति। प्रतियोगिताषु ग्रामस्य ग्रामणी प्रथमद्वितीय- तृतीयस्थानप्राप्तबालकेभ्यः पुरस्कारं ददाति। सर्वे जनाः ग्रामे शान्त्या निवसन्ति। परस्परं साहाय्यमपि कुर्वन्ति। न तत्र कश्चन अपि चौरः सर्वत्र अश्वघोषराज्यं प्रतिभाति। किन्तु सोमदत्तः मङ्गलश्च सर्वदा परस्परं दृष्ट्वा सदैव कुप्यतः दुःखितौ च भवतः।

एकदा ग्रामे कुतोऽपि समायातैः चौरैः सोमदेवस्य गृहे चौरकर्म कृतम्। प्राक् अस्मिन् ग्रामे कदापि केनापि कस्यापि कमपि वस्तु न चोरितम् आसीत्। सर्वे जनाः चिन्तिताः सञ्जाता। इदं दुष्टतामयं नरकगामि अशुद्ध कार्य केन कृतम्? इति चिन्तयन्तः सांयकाले सर्वे मिलित्वा परस्परं वार्ता कुर्वाणाः आसन् यत् एतावन्ति वर्षाण्यतीतानि नाद्यपर्यन्तमस्माकं ग्रामे कदापि केनापि चौर्य कृतं कः भवितुमर्हति ईदृशः जनः तस्मिन् एव समये सोमदत्तः वृद्धः आगतः। अथ तेन पृष्टम्-भो! किमभूत्? किमर्थ बहु-दुखिताः सन्ति? तेषु जनेषु एकः उत्थाय उवाच-रे! सोमदत्त! किं त्वं न जानासि यत् अस्माकं ग्रामे परह्य-रात्रौ केनापि सोमेन्द्रस्य गृहे बहूनि द्रव्यवस्तूनि चोरितानि।अत्र तस्यैव चर्चा प्रचलति। वयं सर्वे एवं विचारयामः यत् - सर्वे ग्रामवासिनः किञ्चित्-किञ्चित् धनं सोमदेवाय दत्वा तस्य वस्तुहानिं च पूरयामः।

सोमदत्तः उवाच - कथम्? वयं सर्वे कथं दास्यामः? किं वयं तस्य द्रव्यवस्तूनि अचोरयाम?

ग्रामणीः उवाच - सोमदेवः अस्माकं पुत्रवत् अस्ति। यदि तस्य हानिः अभूत् तु अस्माकं कर्तव्यं वर्तते - तस्य वस्तुहानिं पूरयामः। अतः एव तस्य साहाय्यं कर्तव्यम्।

सोमदत्त उवाच - चौरकर्म तु एकेनैव कृतं तर्हि सर्वे पापभागिनः कथम्? यः चौरः वर्तते स एव प्रर्त्यर्पयिष्याति।

ग्रामणी उवाच - कोऽपि न वेत्ति यत् -अनन्तघोरपापमयकर्म केन कृतम्। कथं ज्ञापयामः चौरः कः?

सोमदत्तः इदं श्रुत्वा किंचित् कालं विरम्य जगाद-इदं अनन्तघोरपापमयं कार्य तु एक एव जनःकर्तु शक्नोति। सर्वे जनाः तं पृच्छन्ति, कः कर्तुमर्हति? तदा वृद्धः कथयति - मङ्गलः एव ईदृशं दुष्टं कर्म कर्तुमर्हति।

अथ सर्वे जनाः कुपिताः सन्तः मङ्गलस्य गृहं गत्वा तं लगुडैः, पाणिपादाभ्यां ताडितवन्तः। तं च कारावासे निपातितवन्तः चौर्यकरणदण्डे यदा च न्यायः अभूत्, तदा मङ्गलः निर्दोषी सञ्जातः। चौराः तु अन्ये आसन्। तेन तु न चौरी कृता।

ततः मङ्गलः स्वगृहे आगतवान्। तेन दृष्टं यत् - अहं निर्दोषी तु अभवम् किन्तु सर्वे जनाः मां चौरदृष्ट्या पश्यन्ति। किमस्य कारणम्? तदैव स वृद्धः सोमदत्तः तस्य सम्मुखे आगतः।

मङ्गल तं कथयति - अरे दुष्टः! अद्य मया ज्ञातं - किमर्थ मम-तव च परस्परं कदापि मैत्री नाभूत्। यदा कदापि त्वं अन्येद्युः मम सम्मुखे आयास्यति तदा सः दिवसः तव अन्तिमो दिवसो भविष्यति। अहं तव हननं करिष्यामि ईदृशं वचनं श्रुत्वा तेन वृद्धेन ततः झटिति पलायनं कृतम्।

भीतः वृद्धः पञ्चमुपगत्य सम्पूर्णा वार्ता मङ्गलस्य तान् श्रावयति। पञ्चाः उक्तवन्तः-यत् तव न्यायः सोमवासरे भविष्यति। सोमवासरस्य परिषदि सर्वे

www.thearyasamaj.org

एकत्रिता: भवन्ति तदा च पञ्च: वृद्धं कथयति सर्वप्रथमं तु त्रुटि: तवैव वर्तते यतो हि अयं चोरोऽस्ति इति वार्ता त्वया एव सम्पूर्णे ग्रामे प्रचारिता। वृद्ध: कथयति मया तु एक: द्वौ वा जना: एव उक्ता: यत् - मङ्गल: चौर: इति। वृद्ध: स्वकीयां त्रुटिं न अनुगणयति। पञ्च: वदति-त्वं अस्मिन् पृष्ठे लिख यत् - "मङ्गलेन न कृता चोरी" इति। यदा तेन लिखितं तदैव पञ्चेन तं करगलं स्फाटितम् तस्य हस्ते च निधाय उक्तम् यत् - त्वया गमनसमये मार्गे स्फटिता: भागा: क्षेपणीया: अन्यत् च आगमनसमये सर्वान् स्फटितान् भागान् गृहीत्वा आनेतव्यम्। तव न्याय श्व: भविष्यति।

अथ तेन पञ्चकथनानुसारं गमनसमये सर्वा: स्फटिता: भागा: मार्गे क्षिप्ता:। स्वगृहमुपेत्य च रात्रौ सुप्त्वा प्रात:काले आगमनसमये सोमदत्त: मार्गे तेषां कर्गलानां एकं द्वौ च भागान् प्राप्तवान्। स तं नीत्वा पञ्चं निकषा गत:। पञ्च: कथयति यत् - अन्यानि कर्गलानि कुत्र गतानि? स वदति न प्राप्तानि पञ्च: कथयति किमर्थ न प्राप्यन्ते जानाति यतो हि त्वया एक: द्वौ वा जना: कथिता:। तौ तथैव वार्ता प्रचारिता यथा पृष्ठभागा: इतस्तत: गता:। तदा वृद्ध: सोमदत्त: स्वत्रुटिं स्वीकृत्य मङ्गलं क्षमां याचितवान्। सोमदत्तेन उक्तम् -अग्रे कदाप्यहं न एतादृशीं त्रुटिं करिष्यामि।अत: अस्माभिरपि वैरवशादपि कस्यापि हानि: ना करणीया। सा अस्माकं कृते एव दु:खदा भवितुमर्हति।

गुरुकुलपौन्धास्थम् देहरादूनम्

प्र. क्या ब्राह्मण ग्रन्थ वेद है?

उ. ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं, किन्तु महर्षि लोगों के किये वेदों के व्याख्यान हैं। एक कात्यायन को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है। और वे देहधारी पुरुषों के बनाये हैं। इन हेतुओं से ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती है। और मन्त्रसंहिताओं का वेद नाम इसलिए है कि ईश्वर रचित और सब विद्याओं का मूल है।

प्र. आप किनको प्रमाण मानते हैं?

उ. चारों वेदों को विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्रभाग को निर्भ्रान्त स्वत: प्रमाण मानता हूँ अर्थात् जो स्वयं प्रमाण रूप है, कि जिसके अपने स्वरूप के स्वत: प्रकाशक और पृथ्व्यादि के प्रकाशक होते हैं। वे चारों वेद हैं।और चारों वेदों के ब्राह्मण , छ: अंग, छ: उपांग, चार उपवेद और ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्यख्यान को ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ है। उनको पर: प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरूद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।

-महर्षि दयानन्द सरस्वती

www.thearyasamaj.org

विद्यार्थिनां लक्षणानि

❑ डॉ॰ धर्मेन्द्र कुमारः ...

यदि वयं जीवने पूर्णताम् अधिगन्तुम् इच्छामः तर्हि सर्वश्रेष्ठः अवसरोऽस्ति छात्रावस्था। अस्याम् अवस्थायाम् भाविजीवनस्य आधारभूता दृढा निष्ठा वयं सम्पादयितुं समर्था भवामः। अस्य कृते सर्वप्रथमं लक्ष्यं निधारिणीयं भवति। कया दिशा अस्माभिः मन्तव्यम्, भविष्यति काले किम् करणीयम्? अस्माकम् उद्देश्यं किम्? एतत् सर्वं चिन्तनीयम् भवति। जीवनस्य सुनिर्माणे 'अध्ययनम्' विशिष्टं भवति। अध्ययनस्य साफल्यं तदैव सम्भवितुं शक्यते। यदाऽस्माभिः समयपालनं सुतरां करिष्यते। भाग्याधीनं नैव स्थातव्यम्। प्रत्येकेन छात्रेण पुरुषार्थिना भाव्यम्। सर्वप्रथमम् एतदवधेयं भवति-स्वकीयम् उत्तरदायित्वं किमस्ति? छात्रजीवने सर्वप्रथमं कार्यमस्ति - 'विद्यार्जनम्'। विद्यार्जनमेव अस्माकम् प्रथमं लक्ष्यं स्यात्। चाणक्येन कथितम्- 'प्रथमे नार्जिता विद्या' येन छात्रेण प्रथमावस्थायाम् नैव विद्यार्जिता स भाविजीवने किं करिष्यति? विद्याम् अर्जयित्वा तदनन्तरं किं कर्तव्यम्? विनयस्य धारणं कर्तव्यम्। नम्रता धारणीया। यथा वृक्षेषु फलानि आगच्छन्ति ते वृक्षा स्वभावतः एव नम्राः भवन्ति। एवमेव सर्वै जनैः विनम्रता धारणीया। अहंकारः परिवर्जनीयः। सरलता-समानता-सामीप्यता-नम्रता इत्येतेषां गुणानां धारणमेव विनयः भवति। अतएव तत्रभवन्तः पठितवन्तः- विद्या ददाति विनयम्, विनयात् याति पात्रता। नीतिशास्त्रे कथितमस्ति छात्राणां कानि कर्तव्यानि सन्ति? कानि लक्षणानि सन्ति? आगच्छन्तु! एकैकम् लक्षणम् सम्यक्तया जानीमः। येन अस्माकम् उद्देश्यं सुस्पष्टं भवेत् नीतिशास्त्रे एकः श्लोकः अस्ति-

काकचेष्टा वकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्च लक्षणम्।।

ये विद्यार्थिनः सन्ति तेषां कृते इमानि पञ्च लक्षणानि सन्ति। सर्वप्रथमम् उक्तम् अस्ति- (१) काकचेष्टा काक इति कथनेन हिन्दीभाषायाम् 'कौआ' इति, आंग्लभाषायाम् Crow इति कथ्यते। काक इव चेष्टा यस्य सा इयं काकचेष्टा। स काकः किं करोति। अतीव चञ्चलः अस्ति परं तथापि सतर्कः सावधानश्च भवति। तद्वत् छात्रैरपि सावधानमनसा एकाग्रमनसा पठनीयम्। चाञ्चल्यं त्यजतु। चञ्चलता, चपलता नैव उचिता भवति।

(२) द्वितीयं लक्षणं किमस्ति- 'वकोध्यानम्' हिन्दीभाषायाम् "वक" इति "बगुला" उच्यते। युष्माभिः श्रुतमस्ति "बगुला भगत"। वक इव ध्यानम् Concentration अस्माभिः करणीयम्। तस्मिन् वकपक्षिणि 'एकाग्रता' भवति। स एव विद्यार्थी साफल्यम् प्राप्नोति यस्य ध्यानम् अध्ययने एव संलग्नम् भवति। अन्यत् सर्वं विस्मृतम् भवति। मम परिवास्य अन्ये मम भ्रातरः भगिन्यश्च किं किं कुर्वन्ति? तस्मिन् नैव संसक्तम् भवति। तस्य उद्देश्यं केवलं विद्यापाठनम् अस्ति।

यावत्पर्यन्तं स स्वकीयं लक्ष्यं स्व-उद्देश्यं नैव लभते त तावत्पर्यन्तम् अलसः तिष्ठति। (३) तृतीयं लक्षणं प्रतिपादितम् अस्ति - 'श्वाननिद्रा तथैव च' 'श्वान' इति कथनेन हिन्दीभाषायाम् 'कुत्ता' इति। अंग्रेजीभाषायाम् Dog इति कथ्यते। तस्य निद्रा अतीव स्वल्पा भवति। सर्वदैव स सावधानो (Alart) भवति। तद्वदेव निद्रा भवेत् नाधिका, न स्वल्पा। आलसिनः प्रमादिनः मदकारिणः न भवेयुः। शीघ्रं सुप्त्वा प्रातःकाले शीघ्रमेव जागरणीयम् भवति। आंग्लभाषायाम् कथितम् अस्ति Early to bed, early to rise, makes a man healthy wealthy and wise। इदमपि कथितमस्ति- प्रातः काल का पिछड़ा व्यक्ति सायंकाल तक पिछड़ा ही रहता है। well begun is half done।

अयि भो छात्रा? प्रातः काले शीघ्रम् उत्थाय सर्वप्रथमं किं कर्तव्यम्। तत्रादौ भगवतः नामस्मरणं तदनन्तरं गृहेषु ये जना पितरः मातरः ज्येष्ठाः गुरवः भ्रातरः पितामहाः मातामहाश्च भवन्ति तेषां चरणकमलयोः स्पर्शः करणीयः। अभिवादनं नमस्ते, कर्तव्यम् भवति। परस्पर-अभिवादन- करणेन को लाभो भविष्याति? इति उच्यते-

www.thearyasamaj.org

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्त्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम्।।

आयुर्विद्यायशोबलम् इत्येतेषाम् चतुर्णाम् प्राप्तिर्भविष्यति। अतः अभिवादनम् अवश्यं कर्तव्यम्। प्रातकालजागरणसमये नैव आलस्यं कर्तव्यम् एतत् सदा स्मरणीयम्- "आलस्यं हि मनुष्याणा शरीस्थो महान् रिपुः" शरीरे एव सीदति महान् शत्रुः अस्माकम्। सः शत्रु अपाकरणीयः दूरीकरणीयः। न तस्य समीपे मनागपि गन्तव्यम्। सुखस्य अभिलाषो नैव करणीयः छात्रैः सुखं यदि इष्यते चेत् विद्या नैव प्राप्स्यते एतत् सत्यमस्ति-

सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्याम्, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।

स्वकीयं लक्ष्यम् अधिगन्तुं समयपालनं कर्तव्यं काल एव धनमुच्यते Time is money इति उक्तमस्ति। समयस्य कालस्य सदुपयोगः करणीयः। अतः नैव कदापि रिक्तमना (खाली) भवेत्-Emply mind is a devil's work-shop इत्यादि उक्तमस्ति। उत्तमकर्मकर्तार एव संसारेऽस्मिन् महान्तम् पदम्, अमरत्वञ्च अधिगतवन्तः। न ते कदापि मृताः भवन्ति They never die who die in good causes। अतएव कालस्य समयस्य महत्त्वं स्वीकुर्वता एकैकं क्षणम् अमूल्यम् इति मत्वा तस्यः सदुपयोगः करणीयः। उक्तञ्चस्ति- Make use of every moment of life to get more and more knowledge ।

'प्रणम्य शिरसा गुरून्' इतः परम् उषःपानं करणीयम्, तदनन्तरं शौचं गत्वा व्यायामं स्नानं च कृत्वा प्रातराशः करणीयः। पश्चात् विद्यालयं प्रति गन्तव्यम्।

(४) चतुर्थम् लक्षणम् विद्यार्थिनाम् अस्ति- 'अल्पाहारी' 'भोजनम्' समयानुसारमेव कर्तव्यम् नाधिकं न स्वल्पम्। स्वादवर्धकम् 'पिजा' 'चाकलेट'... इति न अपितु शाकादिमयं स्वास्थ्यवर्धकम् भोजनम् भवेत्। भोजनं बारम्बारं चर्वयित्वा एव करणीयम्। भणितिः अस्ति - Eat water and drink food। यदा पर्यन्तम् बुभुक्षा न बाधते न तावत् पर्यन्तम् भोजनीयम् 'Eat to live, do not leaves to eat' इत्यपि कथितम् अस्ति। भोजनं सात्विकं स्यात् न तु तामसिकम् राजसिकञ्च। Cheapest and the simplest food is the best food इति युक्तमेवोक्तमस्ति। को जनः स्वस्थः भवति? यः हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक् भवति स एव स्वस्थः भवति। इति उक्तम् अस्ति।

(५) पञ्चमम् लक्षणमस्ति - 'गृहत्यागी' अस्यार्थो भवति यः गृहं त्यजति। गृहत्यागस्य - अभिप्रायोऽस्ति मोहः नैव अधिकः करणीयः। गृहात् बहिः विद्यालया, महाविद्यालया भवन्ति। तत्र गत्वा केवलम् विद्याऽध्ययनमेव भवेत्। गृहस्य चिन्ता नैव करणीया। इदानीम् मम माता, मम पिता किं करोति! मम भ्राता, मम भगिनी किं किं करोति एतत् सर्वं गृहे एव त्यक्तव्यम्। पठनसमये विद्यालया एव गृहालया भवन्ति। विद्यालयेषु निवसन्तः अनुशासनप्रिया वयं भवेम। विद्यालयस्य अनुशासनम् (Discipline) नैव त्रोटनीयम् एवम्प्रकारेण उपर्युक्तानां पञ्चलक्षणानां परिपालनं सर्वैरेव छात्रैः अवश्यं करणीयम्। तदैव वयं जीवने उत्तरोत्तरं प्रगतिपथम् आरूढा भवितुं शक्नुमः।

सर्वेऽपि राष्ट्रस्य छात्राः विनम्राः आज्ञाकारिणः सहनशीलाः कर्मठाः परिश्रमिणः सतर्काः, सावधानाः, ध्यानशीलाः, अल्पाहारिणः, जागरूकाः विद्याऽअध्ययन-अध्यापनकुशलाः, ज्ञान-विज्ञानप्रसारकाः, परोपकारिणः, त्यक्तविशेषपरिग्रहाः, तपःपुनीतविग्रहाः, ब्रह्मतेजःसम्पन्नाः, स्वल्पसाधनाः, कौपीनधनाः, राष्टनीतिनिर्णायकाः, सकलशास्त्रनिष्णाताः शास्त्रास्त्रविद्याकुशला, वीराः अभीरवः, नीतिकुशलाः, तेजस्विनो, वर्चस्विनो, यशस्विनः बलिष्ठाः श्रेष्ठाः, सहृदया हृदयालवो, दयालवः, दानशीलाः, राष्ट्रसम्पत्तिवर्द्धकाः, प्रवीणाः, धनधान्यधुरीणाः धर्मपरायणाः, राष्ट्रकृते त्यक्तसर्वपरिग्रहा, अतन्द्राः, अमन्द्रा, गतिमन्तः, अविश्रान्तश्रमाः, दृढाङ्गाः, भक्तिपरिवृढाः, शिष्टाः, विनम्राः, सशक्ताः, स्वामिभक्ताः, उन्मुक्तकराः, शिल्पकलाकलाप्रज्ञावन्तः भवेयुः इति कामयामानोऽहम् विरमामि।

सचिवः दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्लीसर्वकारः

www.thearyasamaj.org

भावभीनी श्रद्धांजलि

स्व. श्री नन्दकिशोर प्रसाद सीकरिया

(संस्थापक सन केयर)

2 जनवरी 1916 - 26 जनवरी 2012

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां त एव बन्धाः॥

www.thearyasamaj.org

पंजीयनसंख्या : UTTBIL/22008/235/23546 डाकपंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2011-2013